कत्थक नटवरी नृत्य

लेखक :

के. एस. जैन

प्रकाशक :

भारतीय कला केन्द्र

मथुरा (उ. प्र.)

अगस्त
१९५७

मूल्य
रु० ३·५०

प्रकाशक :
भारतीय कला केन्द्र
मथुरा ।

प्रथम संस्करण
१९५७.

मुद्रक :
त्रिलोकीनाथ मीतल,
अग्रवाल प्रेस, मथुरा.

अनुक्रमणिका

★

सहायक ग्रन्थ-सूची

★

निम्नलिखित पुस्तकों द्वारा मुझे इस पुस्तक को लिखने में सहायता मिली है। उन पुस्तकों के लेखकों का मैं आभारी हूँ।

१—अभिनय दर्पण—मूल लेखक नन्दकेश्वर, हिन्दी अनुवाद, राय उमानाथ वली, एम. एल. सी. तथा श्री मोहन कल्याणपुरकर, लखनऊ।

२—नाट्य शास्त्र—(अँगरेजी में) मूल लेखक भरत मुनि अँगरेजी अनुवाद श्री मनमोहन घोष।

३—कथकलि नृत्य कला—लेखक श्री अविनाशचन्द्र पाण्डेय।

४—भारत के नृत्य—(अँगरेजी में) लेखक श्री प्रजोश बनर्जी।

५—भारत में नृत्य—(अँगरेजी में) लेखक श्री फोविन वोवंस।

६—भारतीय नृत्य—(अँगरेजी में) लेखक श्री रामगोपाल तथा सीरोज दादाचनजी।

७—भारत के नृत्य—लेखक रागनी देवी।

दो शब्द

★

कत्थक नटवरी नृत्य के ऊपर इस पुस्तक को कला-प्रेमियों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मुझे हर्ष हो रहा है। अब तक भरतनाट्यम् मणिपुरी, कथकलि नृत्यों पर कुछ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, किन्तु कत्थक नटवरी नृत्य पर अभी तक कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं है। इसी बात से प्रेरित होकर मैंने इस पुस्तक को लिखने का विचार किया।

वैसे तो नृत्य एक क्रियात्मक शिक्षा की वस्तु है, जिसको किसी अच्छे गुरू द्वारा ही ग्रहण करना चाहिये। किन्तु फिर भी नृत्य सीखने वाले को उसका साधारण शास्त्रीय ज्ञान होना परम आवश्यक है। इसके बिना नृत्य के विद्यार्थी का मस्तिष्क विकसित नहीं हो पाता।

आजकल विद्यालयों में बालकों को नृत्य की जितनी शिक्षा गुरू द्वारा मिलती है, वह वहीं तक सीमित रह जाती है। इस कला का सम्यक् विकास नहीं हो पाता। इस दृष्टि को रखकर मैंने सूक्ष्म रूप से नृत्य के विषय की पूरी थ्योरी इस पुस्तक में देने का प्रयास किया है। भारत में प्रमुख प्रचलित नृत्यों का भी विवरण मैंने यथा स्थान दे दिया है, जिससे उनकी जानकारी में सहायता मिल सके।

जहाँ तक कत्थक नटवरी नृत्य के क्रियात्मक रूप का सम्बन्ध है। इसे गुरू जन सदैव अपने प्रिय शिष्यों तथा सन्तान को ही सिखाते आये हैं। यह क्रियात्मक रूप अभी तक, जनता की वस्तु नहीं बन पाई है। मैंने कुछ प्रारम्भिक बोल दिये हैं तथा उनके नीचे पद संचालन की विधि भी लिख दी है जिससे विद्यार्थियों को उसके अनुसार अभ्यास करने में सुगमता पड़े। कत्थक नृत्य में जिन हस्त मुद्राओं का अधिकतर प्रयोग होता है उनको भी मैंने चित्रों द्वारा अङ्कित कर दिया है। वैसे तो हस्त मुद्राओं

तथा परण और टुकड़ों का नृत्य में कोई अन्त नहीं है और इनका नवीन निर्माण होता रहेगा। कत्थक-नटवरी नृत्य का बहुत कुछ ह्रास हो चुका है यदि इस पुस्तक द्वारा उसके उत्थान में थोड़ी भी सहायता मिली तो मैं इस पुस्तक का लिखना सफल समझूँगा।

मैं गुरुवर श्री शम्भू जी महाराज 'नृत्य सम्राट्' का अति ही कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अपनी वंश-परम्परा मुझे स्वयं लिखाई, जिसको मैंने इस पुस्तक में दे दिया है। शम्भूजी महाराज ने कत्थक-नटवरी नृत्य के विषय में मुझे अनेक महत्वपूर्ण बातें बताईं।

मैं कु० इन्दु जी के प्रति आभार किन शब्दों में प्रदर्शित करूँ कि जिनके सहयोग के बिना इस पुस्तक की पूर्ति नितान्त असम्भव थी। यदि मैं यह कहूँ, कि इस पुस्तक के लिखने का पूर्ण श्रेय कु० इन्दु जी को है तो अनुचित न होगा।

मथुरा पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष श्री कृष्णदत्त वाजपेई जी का भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखकर मेरे ऊपर विशेष कृपा की। आप मुझे नृत्य कला में सदैव ही प्रोत्साहन देते रहे हैं।

श्री ब्रजकिशोर जी ने इस पुस्तक के लिये अनेक रेखा-चित्र, जिस प्रकार की मुद्रायें मैंने बताईं उसी प्रकार बनाकर जो कठिन परिश्रम किया है, उसके लिये मैं उनका सदैव कृतज्ञ रहूँगा।

अन्त में मैं श्री महादेवी जी तथा उस्ताद हफीज भाई आदि उन सब गुरूजनों के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूँ जिनके द्वारा मुझे नृत्य-कला प्राप्त हुई तथा जिनकी कृपा से मैं इस पुस्तक को लिखने में समर्थ हो सका।

—के. एस. जैन



तागडव मुद्रा

भूमिका

★

भारत के प्रमुख चार नृत्यों में आज कत्थक की गणना की जाती है। इसका उद्भव तथा विकास कैसे हुआ, इस संबंध में प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। परन्तु यह प्रायः निश्चित है कि ब्रज में प्रचलित रास से कत्थक की उद्भावना हुई। कत्थक को 'नटवरी नृत्य' भी कहा जाता है। यह नाम नटवर-कृष्ण के प्रसिद्ध रास-नृत्य से कत्थक का संबंध जोड़ता है।

ब्रज में रास का आरंभ करने वाले भगवान् कृष्ण ही माने जाते हैं। हरिवंश, भागवत आदि पुराणों तथा कुछ अन्य संस्कृत ग्रंथों में प्राचीन रास के उल्लेख मिलते हैं। हरिवंश पुराण में बालक कृष्ण का गोप-कन्याओं के साथ सामूहिक नृत्य वर्णित है। इसे 'हल्लीसक क्रीडा' कहा गया है। एक मंडल या घेरे में किए जाने वाले नृत्य को 'हल्लीशक' या 'हल्लीसक' कहते थे। गोपियों के साथ कृष्ण का नृत्य ऐसा ही होता था। इसमें नाचते समय भाव-प्रदर्शन होते और साथ में मधुर गीत भी चलते थे। विष्णु पुराण में शरद की निर्मल चाँदनी में की जाने वाली रास-गोष्ठी का वर्णन है। इसमें ऋतु के अनुकूल चन्द्रमा, चाँदनी, कुमुदवन की छटा आदि पर गीत-गायन होता था। भागवत पुराण में

दशम स्कंध के पाँच अध्याय 'रास-पंचाध्यायी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें रास-क्रीडा का अधिक विस्तार से वर्णन है। ब्रह्म पुराण में भी रास का विवरण उपलब्ध है।

ये चारों पुराण प्राचीन माने जाते है। इनसे श्रीकृष्ण-कालीन रास के स्वरूप का इतना आभास मिलता है कि रास एक गोल घेरे में किया जाता था। दो-दो पुरुषों के बीच में एक-एक स्त्री और कभी-कभी दो-दो स्त्रियों के बीच में एक-एक पुरुष खड़े होते और मंडल बाँध कर नृत्य करते थे। स्त्रियाँ विशेष रूप से कंकण, नूपुर आदि बजने वाले आभूषण पहने रहती थीं। नृत्य स्वर-ताल सहित एकरस होते थे। उनके साथ ऋतु के अनुकूल गेय पदों का गायन होता था।

भरत मुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में रास या रासक को एक उपरूपक माना है और उसके तीन प्रकार बताए हैं—ताल रासक, दंड रासक और मंडल रासक। इनमें मंडल रासक पुराणों का हल्लीसक नृत्य था। ताल रासक में नृत्य के साथ हाथों से ताल देने की प्रधानता रही होगी। दंडरासक को लकुट-रास भी कहते थे। इसमें नर्तक लोग छोटे-छोटे लकुट या कठ-ताल लेकर नाँचते समय उन्हें बजाते जाते थे। बारहवीं शती के लेखक जिनदत्त सूरि ने लकुटरास की चर्चा की है। १२७० ई० में रचित 'सप्तक्षेत्रीरास' नामक ग्रंथ में तालरास और लकुटरास का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि पहला भाट लोगों द्वारा किया जाता था और दूसरे में नर्तक भाग लेते थे।

कवि विल्वमंगल द्वारा रचित 'बालगोपाल स्तुति' नामक ग्रंथ की कई सचित्र प्रतियाँ मिली हैं। उनके चित्र पंद्रहवीं शती की गुजराती शैली के हैं। एक चित्र में हाथों में छोटे-छोटे दंड लिए हुए गोप-गोपी दिखाए गए हैं, जो एक मंडल में नृत्य कर रहे हैं। बीच में राधा-कृष्ण हैं। प्रत्येक गोप के अगल-बगल एक-एक गोपी है। यह चित्र दंडरासक का सुन्दर उदाहरण है।

प्राचीन हल्लीसक नृत्य के उदाहरण अजंता और बाघ गुफा में मिलते हैं, जो क्रमशः गुप्त और उत्तरगुप्तकाल के हैं। इनमें एक प्रधान नर्तक या नर्तकी के साथ अनेक वाद्य बजाती हुई नर्तकियाँ दिखाई गई हैं। वर्तमान कत्थक में हल्लीसक तथा ताल रासक इन दोनों के तत्त्व मिलते हैं। इन तत्त्वों का समन्वय होकर कत्थक रूप कब बना, यह बतलाना कठिन है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मुगलकाल के प्रारंभ में कत्थक का वर्तमान रूप अस्तित्व में आ चुका था।

प्रस्तुत पुस्तक में श्री के० एस० जैन ने कत्थक-नटवरी नृत्य का प्रथम बार विस्तृत विवेचन उपस्थित किया है। इसमें कत्थक नृत्य के शास्त्रीय स्वरूप के साथ उसका व्यावहारिक रूप भी वर्णित है। नृत्य संबंधी बोलों के देने के अतिरिक्त विविध मुद्राओं को चित्रों द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इससे यह पुस्तक बहुत उपयोगी बन गई है। श्री जैन ने कत्थक नृत्य के साथ भारत के अन्य प्रमुख नृत्यों का भी विवेचन किया है। पुस्तक नृत्य के विद्यार्थियों के लिए तो बहुत आवश्यक

है ही, जनसाधारण के लिए भी रोचक और उपादेय सिद्ध होगी। लेखक स्वयं एक कुशल नर्तक हैं और उन्होंने अपने अनुभव को इस पुस्तक के रूप में प्रस्तुत कर संगीत-प्रेमी जनों का उपकार किया है।

श्रावण शु० ११,
सं० २०१४

कृष्णदत्त वाजपेयी
अध्यक्ष,
पुरातत्त्व संग्रहालय, मथुरा

अध्याय—१

नृत्य तथा अभिनय के भेद

★

नृत्य की परिभाषा—मानव नृत्यमय है। नृत्य उसकी सहज, स्वाभाविक भावाभिव्यक्ति है। जब कोई भाव चरम सीमा तक पहुँच जाता है तब मनुष्य के अंग स्वतः उस भाव के अनुसार संचालित हो उठते हैं। कलाकार इन्हीं अङ्ग-संचालनों को संगीत और लय में बाँध कर उन्हें कलात्मक रूप दे देता है वही नृत्य कहलाता है। मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी जिस समय आनन्द-विभोर हो उठते हैं तब वे नृत्य कर उठते हैं। चर-अचर सब में यह बात लागू है। मेघों को देखकर मयूर, बीन को सुनकर सर्प तथा चन्द्रमा को देखकर लहरें स्वयं थिरक उठती हैं।

नृत्य की उत्पत्ति—नृत्य की उत्पत्ति के विषय में कोई प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। इसका विकास वेदों से भी पूर्व माना जाता है। अथवा यों कहें कि इसका विकास मानव की सभ्यता के साथ-साथ हुआ, तो अनुचित न होगा। भाषा के जन्म से पूर्व मानव संकेतों द्वारा ही अपने भाव प्रकट करता रहा होगा। यही संकेत आज नृत्य-मुद्राओं में उपलब्ध है। इसका सबसे प्रथम ग्रन्थ भरत मुनि का '**नाट्यशास्त्र**' है।

नाटय शास्त्र के अनुसार—ब्रह्मा ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्वेद से क्रमानुसार पाठ्य, अभिनय, गीत और रस के विषय संग्रह किये तथा इन्द्र से उनको सीख कर प्रस्तुत करने के लिए कहा। किन्तु इन्द्र ने असमर्थता प्रकट की और कहा यह कार्य तो केवल मुनि आदि ही कर सकते हैं। इस पर ब्रह्मा ने भरत मुनि तथा उनके सहस्र पुत्रों को यह कला सिखाई। भरत मुनि ने अपना प्रदर्शन शिव के सम्मुख किया। शंकर भगवान् उनके प्रदर्शन से बहुत प्रसन्न हुए। अपने गण ताण्डु को उन्होंने आगे सिखाने के लिए आज्ञा दी और ताण्डव सिखाया, इधर पार्वती ने बाण की पुत्री ऊषा को लास्य नृत्य की शिक्षा दी, जिन्होंने वह नृत्य द्वारिका की गोपियों को सिखाया। इस प्रकार नृत्य का संसार में प्रचार हुआ।

नृत्य से लाभ

मानसिक लाभ—भारतीय नृत्य धर्म का अंग है तथा अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति का साधन है। भारतीय नृत्य लोक हित की भावना पर अवलम्बित होते हुए भी भगवान् को प्रसन्न करने का साधन मात्र है—

यो नृत्यति प्रहृष्टात्मा, भावै रत्यन्तभक्तितः।
सनिर्दहति पापानि, जन्मान्तर शतैरपि॥

(द्वारका माहात्म्य)

(जो प्रसन्न चित्त से श्रद्धा भक्ति सम्पन्न होकर नृत्य करते है वे, जन्म-जन्मान्तर के पापों से छूट जाते हैं ।)

भगवान् इससे प्रसन्न होते हैं । नृत्यकार पहले मंदिरों में नृत्य करते थे तथा वे ही भगवान् के सेवक कहलाते थे । देव-दासी-प्रथा भी प्रचलित थी । देवदासियों का कार्य केवल भगवान् के सम्मुख नृत्य करना तथा उन्हें प्रसन्न करना था । दक्षिण में अनेक मंदिरों में अब भी इन नृत्यों के अनेक चित्र बने मिलते हैं ।

शारीरिक लाभ–नृत्य के अनेक शारीरिक लाभ भी हैं । यह एक सुन्दर व्यायाम है जो कि शरीर के अंग-प्रत्यंग को सुडोल बनाता है । इसकी एक विशेषता यह भी है कि कपड़े पहने हुए यह व्यायाम किया जा सकता है । इससे शरीर की पुष्टि होती है तथा भोजन पचने में सहायता मिलती है । इससे शरीर फुर्तीला बनता है ।

नृत्य स्वयं को प्रसन्न करने वाला तथा दूसरों को भी प्रसन्नता देने वाला है । इसका प्रदर्शन एक ही समय में अनेक लोगों को आनन्द पहुँचाता है । मनुष्य की चित्त-वृत्तियों को हर प्रकार-आनन्दित और संयमित बनाने के प्रयोजन से भारतीय नाट्य की रचना हुई है । जब मानव को अनेक सांसारिक चिन्तायें घेर लेती हैं तब वह नाट्य से तदात्म्य सम्बन्ध जोड़कर इतना प्रभावित हो जाता है कि अपनी

चिन्तायें भूल जाता है। भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र में कहा है कि इसके द्वारा क्लान्त, श्रान्त शोकातुर तथा तपस्वी सभी को शान्ति मिलती है। इससे धर्म, यज्ञ, आयु, कल्याण और बुद्धि की वृद्धि होती है एवं दर्शकों को उपदेश मिलता है।

नृत्य के प्रकार

नृत्य के प्रकार समझने से पूर्व हमको तीन शब्दों को पूर्ण रूप से समझ लेना चाहिए—नृत्त, नाट्य, और नृत्य।

नृत्त—जिसमें लय और संगीत के साथ अंग-संचालन होता है तथा कोई भाव प्रदर्शन न हो, वह नृत्त है।

"भावाभिनय हीनं तु नृत्तेत्यभिधीयते।"

(**अभिनय दर्पण**)

नाट्य—नाट्य का अर्थ किसी भी वस्तु की उसी प्रकार नकल करनी है, चाहे वह प्रकृति की हो, या अन्तर्वृत्तियों की या बाहिरी चेष्टाओं का अनुकरण किया जाय, जैसे किसी बच्चे के रोने आदि का अभिनय।

नृत्य—नृत्त और नाट्य मिलकर नृत्य बनता है। इसमें रस पूर्ण परिपक्व अवस्था तक पहुँचता है। नृत्य की उत्पत्ति चार प्रकार के अभिनय द्वारा होती है—

१ आंगिक, २ वाचिक, ३ आहार्य तथा ४ स्वात्तिक ।

१. आंगिक अभिनय—शारीरिक संचालन के द्वारा जितने भाव प्रदर्शित होते हैं वे आंगिक अभिनय के अन्दर आते है । ये तीन प्रकार से प्रदर्शित होते है—अंग, प्रत्यंग और उपांग । अंग ६ प्रकार के हैं—सिर, हाथ, छाती, कमर, बगल और पैर । प्रत्यंग ६ प्रकार के हैं—कंधा, बाहु, पीठ, पेट, जांघ और कूल्हा । उपांग—नेत्र, भौह, आंख की पुतली, दाँत, होठ आदि सब उपांग कहलाते है । जब अंग चलता है तब प्रत्यंग और उपांग भी कार्य करते हैं ।

जितनी भी संयुक्त अथवा असंयुक्त हस्त मुद्राओं का प्रयोग नृत्य में होता है वह आंगिक अभिनय के अन्तर्गत ही आता है ।

२. वाचिक अभिनय—मुँह से बोले हुए शब्दों तथा संगीत के द्वारा जो नृत्य प्रदर्शन में सहायता मिलती है जैसे कोई गीत गाया जाय और फिर उसी के अनुसार भाव दिखाये जांय तो बोले हुए शब्द दर्शकों के भाव समझने में सहायता देते हैं, वह वाचिक अभिनय है ।

३. आहार्य अभिनय—जो वस्त्र पहन कर नृत्य किया जाता है और जिसके द्वारा प्रदर्शन समझाने में सहायता मिलती है । जैसे रावण का भाव प्रगट करने वाला व्यक्ति यदि दस सिर लगा कर सम्मुख उपस्थित हो तथा कृष्ण बांसुरी लेकर आवें तो दर्शकों को समझने में देर नहीं लगेगी कि वह व्यक्ति क्रमशः रावण तथा कृष्ण का अभिनय करने वाला है ।

४. **स्वात्तिक अभिनय**—स्वात्तिक भाव आठ प्रकार के हैं। कम्पन, रोमांच, मूर्छा तथा अश्रु लाना आदि स्वात्तिक अभिनय के अन्तर्गत आते हैं। यदि भय का भाव दिखाना है और नृत्यक काँपने लगे तथा उसके सूक्ष्म सा पसीना भी आने लगे तो भय का भाव समझने में सहायता मिलेगी और इसी प्रकार की चेष्टायें स्वात्तिक अभिनय में आती हैं।

नृत्य दो प्रकार के होते हैं (१) ताण्डव और (२) लास्य

ताण्डव—वीर रसे महोत्साहो पुरुषो यत्र नृत्यनि ।
रौद्र भाव रसो पत्तिस्त तांडवमिति स्मृतं ।।
(सङ्गीत नृत्याकार)

तांडु के नाम पर ताण्डव नृत्य का नाम पड़ा। इसके अंग संचालन कठोर तथा आवेश पूर्ण होते हैं। हस्त क्रियाएँ ऊपर से नीचे की ओर या नीचे से ऊपर की ओर चलती हैं। इसमें कटि मुद्राओं द्वारा भी भावों को व्यक्त किया जाता है, जिसके चार भेद हैं। अभङ्ग, समभङ्ग, त्रिभङ्ग, और अतिभङ्ग। इसका संगीत वीर रस प्रधान होता है। यह पुरुष नृत्य है। ताण्डव नृत्य में विराट् शक्ति के भिन्न भिन्न रूपों का प्रदर्शन होता है। इसके सात रूप प्रसिद्ध हैं—

१. संहार, २. त्रिपुर, ३. कालिका. ४. संध्या, ५. गोरी ६. उमा, ७. आनन्द ।

लास्य—लास्यते सुकुमारिणा गमकध्वनिर्वधनि
इशशब्दास्यः प्रसन्नस्योमुखरागो भवेदिधा ।।
(सङ्गीत रत्नाकर)



लास्य मुद्रा

यह शृंगार प्रधान नृत्य है। इसमें अंग-संचालन कोमलता लिए होता है तथा इसकी हस्त क्रियाएँ दांये से बांये या बांये से दांये की ओर कार्य करती हैं। इसका संगीत कोमल होता है। कृष्ण की रास लीला आदि इसमें आती हैं। इसका तीन प्रकार से प्रदर्शन किया जाता है—विषम, विकट और लघु।

अध्याय—२

भारत के शास्त्रीय नृत्य

★

भारत में मुख्य चार प्रकार के शास्त्रीय नृत्य प्रचलित हैं। इनमें से कत्थक तथा मणिपुरी उत्तर भारत के तथा भरतनाट्यम् और कथकलि दक्षिण भारत के नृत्य हैं। कत्थक पुरुष नृत्य तथा मणिपुरी स्त्री-नृत्य है। उसी प्रकार दक्षिण में कथकलि पुरुष नृत्य तथा भरत नाट्यम् स्त्री-नृत्य है।

कत्थक

कत्थक नृत्य की उत्पत्ति के विषय में कोई शास्त्रोक्त प्रमाण नहीं मिलता। यदि ब्रज की रासलीला देखी जाय तो उसकी पद्धति से हम निश्चित ही इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि कत्थक नृत्य का विकास रासलीला से ही हुआ है। आरम्भ में यह नटवरी नृत्य कहलाता था, और इसको देव-मंदिरों में किया जाता था। आरती के पश्चात् गायन के साथ नृत्य होता था, तथा कथाएँ भी नृत्य में वर्णित होती थीं। जो व्यक्ति इस नृत्य को मन्दिरों में करते थे, वे कत्थक कहलाते थे। "कथन करे सो कत्थक कहिये" इसी से इस नृत्य का नाम कत्थक नटवरी नृत्य पड़ा।

चित्र नं० ३



कत्थक

मुगल काल के समय कत्थक नटवरी नृत्य की परम्परा बदल गई तथा बहुत से मुसलमानी शब्द, जैसे आमद, सलामी आदि इसमें आ गये। वह देव मन्दिरों से राज दरबार का नृत्य बन गया। तभी से इस नृत्य का नाम केवल 'कत्थक' रह गया, जो आज तक प्रसिद्ध है। पदों का स्थान गजल और ठुमरी ने ले लिया। अच्छे घरानों के लोग उस समय नृत्य को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे और यह नृत्य केवल घरानेदार या कुछ बाईजियों तक ही सीमित रह गया। भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् इस नृत्य के प्रति फिर से लोगों का ध्यान गया है। और इसके पुनरुद्धार के लिये 'संगीत-नाटक अकादमी' आदि संस्थाएँ प्रयत्नशील हैं।

कत्थक नृत्य को तीन भागों में प्रस्तुत किया जाता है—

प्रथम भाग नृत्त भाग होता है, जिसमें बोल, परण और टुकड़ों को पैर से निकालते हुये अंग-संचालन किया जाता है। इसमें बोलों की पढ़ंत बहुत शुद्ध हो तथा जो बोल पढ़ा जाय वह पैर से बिलकुल स्पष्ट निकलना चाहिये। इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की लय के टुकड़े तथा परनें प्रस्तुत की जाती हैं। इसमें मुख्य संगत तबला अथवा पखावज की होती है। पद-संचालन केवल दो प्रकार का सम तथा विकृत होता है। अन्य पद संचालन नहीं के बराबर हैं।

दूसरा भाग गत-भाव का प्रस्तुत किया जाना है। इसमें अधिकतर कृष्ण की लीलाएँ प्रदर्शित होती हैं। ये शृंगार

रसपूर्ण तथा लास्यमयी होती हैं। आजकल अधिकतर नृत्यकार इसमें केवल भावों की झलक दिखाते हैं, जैसे कृष्ण को बांसुरी लिये हुए अथवा पर्वत उठाते हुए या राधा को सिर पर गगरी लिये हुए। कृष्ण की पूर्ण लीलायें अथवा अन्य कथायें बहुत कम प्रस्तुत की जाती हैं। इसके पश्चात् नृत्यकार पैर की तैयारी दिखाते हैं, जिसे 'तत्कार' कहते हैं। इसके मुख्य शब्द त=थे=ई हैं। जिनका अर्थ इस प्रकार है—त=तन; थ—थल;ई—ईश्वर। अर्थात् तन से जो नृत्य करो वह परमात्मा के लिए करो। तत्कार में पैर बहुत द्रुत अवस्था में चल कर समाप्त होता है तथा इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की लयकारियाँ भी दिखाई जाती हैं।

तीसरा भाग अभिनय का होता है। इसमें भावपूर्ण पदों के साथ नृत्य किया जाता है। इसमें एक-एक शब्द को अनेक प्रकार से व्यक्त किया जाता है। नृत्याचार्य श्री विन्दादीनजी ने स्वयं अनेक पद बनाए, जो अब तक प्रचलित हैं। किन्तु अब इस शैली पर बहुत कम लोग नृत्य करते हैं। मुगल काल से पदों का स्थान ठुमरी आदि ने भी ले लिया है।

संगीत—कत्थक नृत्य के साथ जो संगीत चलता है वह केवल सारंगी अथवा बाजे पर होता है। केवल एक लहरे को बार-बार दुहराया जाता है। इससे दर्शक कभी-कभी ऊब जाते हैं। विशेष कार्य मृदंग अथवा तबले पर दिखाया जाता है। तबला बजाने वाला अच्छा कुशल कलाकार होना चाहिए। तभी कत्थक नृत्य में आनन्द आता है।

वेशभूषा—कत्थक नृत्य की वेशभूषा बहुत साधारण होती है। चूड़ीदार पाजामा तथा कुर्ता ही पर्याप्त रहता है। नर्त्तक बगल में दुपट्टा बांध लेता है किन्तु इसमें घुंघरूओं की संख्या प्रत्येक पैर में कम से कम एक सौ होनी आवश्यक है।

कत्थक नृत्य के घराने—कत्थक नृत्य के दो प्रसिद्ध घराने प्रचलित हैं, प्रथम लखनऊ का तथा दूसरा जयपुर का। लखनऊ के प्रसिद्ध आचार्य श्री कालकादीन जी तथा बिन्दादीनजी और जयपुर के जियालाल जी हो गए हैं। लखनऊ घराने की विशेषता भाव-प्रदर्शन है। वहाँ के नर्तक भाव को इस प्रकार ताल में बांध कर प्रदर्शित करते हैं कि वह बहुत सुन्दर और आकर्षक लगने के साथ पूर्णतः स्पष्ट और सजीव हो उठता है। लखनऊ घराने का अंग-संचालन बहुत कमनीयता लिए सुडौल बनता है। इनके बोल अधिकतर पखावज के बोल होते हैं। अभिनय में पद और ठुमरी के साथ भाव-प्रदर्शन भी इनकी विशेषता है। इस घराने के नृत्य-सम्राट् श्री शम्भू महाराज तथा श्री लच्छू महाराज आज भी जीवित हैं।

जयपुर घराना—राजस्थान में जयपुर कला का केन्द्र रहा है, जहाँ प्रकृति और मानव ने नृत्य में सौन्दर्य भर दिया है। जयपुर घराना भिन्न-भिन्न लयकारियों पर ध्यान देते हुए पैर की तैयारी पर अधिक बल देता है। इसके बोल कोमल होते हैं। कवित्त आदि भी लय में बाँध कर लिए जाते हैं।

इनके प्रमुख आचार्य श्री सुंदरप्रसाद जी, नारायनजी सोहनलाल जो आदि आज भी जीवित हैं।

लखनऊ घराने के आचार्यों की परम्परा–श्रीईश्वरीयजी इलाहाबाद ग्राम हंडिया के रहने वाले थे। इनको श्रीकृष्ण भगवान ने दर्शन दिया और कहा कि तुम नटवरी नृत्य पर एक भागवत बनाओ। ईश्वरी जी ने नटवरी नृत्य को लिखना प्रारम्भ किया और जब अपने हिसाब के अनुसार उसको पूर्ण कर चुके, तो उन्होंने उसकी शिक्षा अपने तीनों पुत्र श्री अड़गू जी, खड़गू जी, तथा तुलाराम जी को दी। नाग पंचमी के दिन श्री ईश्वरी जी की मृत्यु सर्प के काटने से हो गई। उनकी पत्नी अपने पति को लेकर सती हो गई। श्री खड़गूजी के तीन पुत्र हुए श्री प्रकाश जी, दयाल जी तथा तीसरे भाई का नाम हरिलालजी था। प्रकाश जी के माता, पिता का जब देहान्त हो गया तब वह हंडिया से लक्ष्मनपुर आये जिसका कि नाम आज लखनऊ है। लखनऊ में इस समय आसफुदौल्ला का राज्य था। वह वहाँ के राज नर्तक बने और नटवरी नृत्य के बजाय कत्थक नृत्य इसका नाम यहीं से पड़ा। वास्तव में इसका नाम नटवरी नृत्य ही है। प्रकाश जी के तीन पुत्र हुए दुर्गाप्रसाद, ठाकुरप्रसाद और मानसिंह जी। ठाकुरप्रसाद जी बहुत ही कुशल नृत्यकार बने। वे वाजिदअली शाह के गुरू भी थे। वाजिदअली शाह स्वयं भी एक अच्छे नृत्यकार थे तथा उन्होंने भी अनेक ठुमरी आदि को रचा है।

वाजिदअलीशाह के दरबार में श्री ठाकुर प्रसाद का बहुत ही उच्च स्थान था। श्री दुर्गाप्रसाद जी के तीन पुत्र हुए—महाराज विन्दादीन जी, कालिका प्रसाद जी तथा भैरों प्रसाद जी। भैरों प्रसाद जी की मृत्यु कम अवस्था में ही होगई। श्री कालिकादीन तथा विन्दादीन जी ने इस कला को उच्च शिखर पर पहुँचाया। ऐसा बताया जाता है कि १२ वर्ष तक इन्होंने केवल ततकार पर ही अभ्यास किया। एक समय वाजिदअलीशाह के दरबार में श्री विन्दादीन जी की कोदऊ सिंह जी प्रसिद्ध पखावजी से भिड़न्त हो गई किन्तु अन्त में जीत विन्दादीन जी की ही हुई। कालिकादीन तथा विन्दादीनजी राधा कृष्ण दोनों का अभिनय करके उनकी लीलाओं को बहुत ही भाव पूर्ण एवं कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करते थे। महाराज विन्दादीन जी के ही समय में जयपुर के श्री हनुमान प्रसाद तथा जैयलाल और सुन्दर प्रसाद जी उनके शिष्य बने तथा पश्चात् में अपनी हस्तकें बनाकर एक अलग घराना स्थापित किया। श्री कालिका-प्रसाद जी की सन् १९१० में तथा विन्दादीन जी की १९१७ में मृत्यु हो गई।

श्री कालिका प्रसादजी के तीन पुत्र हुए। श्री अच्छनजी (जगननाथ), श्री लच्छूजी (बैजनाथ) तथा श्रीशम्भूजी। अच्छन महाराज नबाव रामपुर के यहाँ कई वर्ष तक दरबार नर्त्तक बन कर रहे। इनको लय पर पूर्ण अधिकार था। ऐसा बताते हैं कि नृत्य करते २ आप इनको किसी भी मात्रा से कह दीजिये वहीं से चल कर वह सम पर आ जाते थे। किन्तु यह हमारा

दुर्भाग्य समझिये कि वह अधिक दिन नृत्य कला की सेवा नहीं कर सके और १९४६ में इस संसार से चल बसे। इनके पुत्र बिरजू जी अपनी छोटी आयु में ही आजकल अच्छा प्रदर्शन करते हैं।

श्री शम्भू महाराज भाव तथा अभिनय के सम्राट् हैं। जिस समय कोई भी भाव लेकर खड़े होते हैं तो दर्शकों के मुख से केवल प्रशंसा के ही शब्द सुनाई पड़ते हैं। इन्होंने भी प्रारम्भ में ततकार पर बहुत अभ्यास किया है। इनको ८ वर्ष की आयु में श्री बिन्दादीन जी ने अपना शिष्य बनाया। उसके थोड़े ही काल बाद श्री बिन्दादीन जी की मृत्यु होगई और मरते समय श्री अच्छन जी को बुलाकर उनको सौंपा और कहा कि इनको अपने पुत्र के समान समझना। श्री शम्भू महाराज १३ वर्ष की अवस्था में बनारस के ठुमरी अंग के उस्ताद रहीम-उद्दीन खाँ के भी शिष्य बने और उनसे ठुमरी अंग का गायन सीखा। १४ वर्ष की अवस्था में शम्भू महाराज की माता उनको लेकर अच्छन महाराज के पास रामपुर आईं और १८ वर्ष तक इन्होंने यहाँ नृत्य की शिक्षा ग्रहण की। इसके पश्चात् यह लखनऊ आ गये। श्री शम्भू महाराज की अवस्था इस समय ५० वर्ष की है। आपको देहरादून कान्फ्रेंस में 'नृत्य सम्राट्' की उपाधि मिल चुकी है तथा १९५५ में राष्ट्रपति का सबसे बड़ा पुरस्कार इन्हें नाटक ऐकेडमी द्वारा मिल चुका है। आजकल आप भारतीय कला केन्द्र दिल्ली में नृत्य की शिक्षा देते हैं। आपके एक पुत्री ५ वर्ष तथा एक पुत्र २ वर्ष का जीवित



भरतनाट्यम्

है। हमें पूर्ण आशा और विश्वास है कि नटवरी नृत्य की परम्परा को इनके द्वारा फिर से जीवन दान मिलेगा।

श्री लच्छू महाराज आजकल बम्बई रहते हैं। कई चित्र-पटों में भी इन्होंने अपना नृत्य निर्देशन दिया है। इस वर्ष इनको भी राष्ट्रपति पदक मिल चुका है।

भरतनाट्यम्

भरतनाट्यम् दक्षिणी भारत का बहुत ही प्रमुख शास्त्रीय नृत्य है। यह भरतमुनि के नाट्य शास्त्र पर आधारित है। इसमें प्राचीन परम्परा को अब तक भी बहुत सुरक्षित रखा है। यह भ से भाव, र से राग तथा त से ताल लेकर भरत-नाटचम् कहलाया। प्रारम्भ में यह देवदासी नृत्य कहलाता था और इसे मन्दिरों में देवदासी प्रस्तुत किया करती थीं। इनका कार्य केवल नृत्य करना ही होता था तथा आयु भर अविवाहित रहना पड़ता था। आजकल यह प्रथा प्रायः समाप्त हो रही है। इसकी उत्पत्ति के विषय में एक कथा प्रचलित है कि अर्जुन ने उत्तरा को वृहन्नला के वेष में "भरतनाटचम्" सिखाया था और तभी से यह संपूर्ण दक्षिण में प्रचलित हुआ। यह भी बताया जाता है कि चित्रभानु की पुत्री चित्रांगदा को भी नृत्य अर्जुन ने सिखाया और वहाँ से इस नृत्य का प्रचार हुआ। इस नृत्य का उत्तरी भारत में भी अब काफी मात्रा में प्रचार होता जा रहा है। इसका आधार दक्षिण भारत का कर्नाटक संगीत ही रहता है। इसको पाँच भागों में प्रस्तुत किया जाता है।

१. अल्लारिप्पू, २. जतिस्वरम्, ३. शब्दम्, ४. वर्णम्, ५. थिल्लाना ।

अल्लारिप्पू—भरतनाटयम् नृत्य अल्लारिप्पू से प्रारंभ किया जाता है जिसे स्तुति कहते हैं। यह नृत्त के अन्तर्गत आता है इसमें भिन्न-भिन्न अंग और उपांगों को सर्व प्रथम चला कर बताया जाता है। जिससे शरीर खुल जाता है और स्फूर्ति आ जाती है।

जतिस्वरम्—जैसा कि इसके नाम से पता चलता है यह पूर्णतः नृत्त भाग है इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की लय भी दिखाई जाती हैं। इसमें चाहे जितनी जतियों का प्रदर्शन किया जा सकता है किन्तु एक को दो बार नहीं दिखाते। जति का अर्थ नृत्य का एक भाग और स्वरम् याने सा रे ग म। इसमें जो मुद्रा दांयी ओर दिखाई जाती है वही बांयी ओर भी दुहराई जाती है। इसमें मृदंग का विशेष कार्य रहता है।

'शब्दम्'—यहीं से अभिनय भाग का एक प्रकार से प्रारंभ है। प्रारम्भ में थोड़ा सा नृत्त भाग दिखा कर फिर गाने के साथ आरम्भ हो जाता है। इसमें शब्दों के अनुसार ही उसको मुद्रा अथवा भावों द्वारा व्यक्त किया जाता है। गीत की व्याख्या में हाथों की गति के साथ-साथ आँखें, भौं, कंधे आदि की चपलता का भी विशेष योग रहता है। इसका प्रसंग शृंगार रस से ओतः प्रोत रहता है। नृत्त के इस भाग में कितने ही रूपान्तर प्रगट किये जाते हैं। नृत्यकार इसमें एक घन्टे तक का समय व्यतीत कर देते हैं, छोटी २ रचनायें भी जो

'पदम' कहलाती हैं वह भी विभिन्न रागों में इसमें गाई जाती हैं।

'वर्णम्'—जिसको कि पहले स्वर जाति कहते थे अर्थात् स्वर+जाति। यहाँ से पूर्ण रूप से अभिनय भावप्रारम्भ हो जाता है। पदों के बीच-बीच में नृत्त भाग भी दिखाया जाता है।

'थिल्लाना'—अन्त में थिल्लाना की बारी आती है। इस पर ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तरी भारत की विशेष छाप पड़ी है। इसकी रचना बिना शब्दों के राग की होती है। तराने के साथ-साथ अंग संचालन चलता है यह बहुत ही जटिल रचना होती है।

संगीत—भरतनाटचम् के साथ दक्षिणी भारत का कर्नाटक पद्धति का संगीत चलता है। इसमें मृदंगम्, खड़ताल बांसुरी तथा वायलन का विशेष रूप से प्रयोग होता है। पदों को गाने में एक प्रवीण गायक को भी विशेष आवश्यकता रहती है। गाने अधिकतर तामिल, तैलगू या संस्कृत में होते हैं। वह अधिकतर जयदेव के गीत गोविन्द या राधा-कृष्ण के जीवन से संबंधित रहती है।

वेष भूषा—भरतनाटचम् की वेष भूषा बहुत ही आकर्षक होती है इसमें आभूषणों का विशेष प्रयोग होता है। धोती, दोनों पैरों में लांग बना कर पहनी जाती है, चोली बहुत चमकदार तथा कसी हुई का प्रयोग होता है।

आचार्य—इसके विशेष रूप से आचार्य आजकल श्री राम **गोपाल तथा रुक्मिणी देवी अरुण्डेल हैं।** इस नृत्य के दो विशेष घराने—मोहिनी नाटचम् और भरतनाटचम् प्रचलित हैं।

श्रीमती रुक्मिणी देवी अरुण्डेल की संक्षिप्त जीवनी

रुक्मिणी देवी का जन्म चिवसनुलर में श्री नीलकण्ठ शास्त्री के घर हुआ था। इनकी माता का नाम श्रीमती शेषाम्मल था। रुक्मिणी जी के पिता थियोसफी मत को मानने वाले थे और भारतवर्ष में अड़ियार थियोसोफिस्तों का प्रधान पीठ स्थान है। श्री नीलकण्ठ जी अंतिम दिनों में इसी स्थान पर घर बना कर रहने लगे थे। अड़ियार में ही पहली वार मि० अरूण्डेल से रुक्मिणी का मिलन हुआ और १९२० ई० में इन दोनों का विवाह हो गया।

सन् १९२४ में रुक्मिणी देवी अरूण्डेल यूरोप की यात्रा के लिए तथा १९२६ में आस्ट्रेलिया की यात्रा को गईं। आस्ट्रेलिया में ही श्रीमती रुक्मिणी देवी अरूण्डेल का अनापावलोवा से भेट हुई और इनके मन में एक सफल नर्तकी बनने का भावना जाग उठी। उन्होंने भारतीय नृत्य में नया जीवन डालने का संकल्प कर लिया। बाहर रहते हुए भी धीरे-धीरे उन्होंने नृत्य कला में निपुणता प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया।

सन् १९३५-३६ में रुक्मिणी जी पराड़नल्लूर के श्री मोनाक्षी मुन्हरम् के सहवास में आई और इनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया तथा नृत्यकला में प्रवीण हुई। इनके साथ संगीत का कार्य श्री पापनाशम शिवन् देखते थे।



मणिपुरी

सन् १९३६ में पहली बार इन्होंने भारत में सार्वजनिक जलसे में नृत्य किया और सफलता प्राप्त की। आज यह भारत की सफल नर्तकियों में से हैं।

अड़ियार मद्रास में इन्होंने कलाक्षेत्रम् की भी स्थापना की है। इनके नृत्यों के आधार भूत गीत अधिकांश शृङ्गार और भक्ति रस परिपूर्ण होते हैं। भाव व्यक्त करने की क्षमता इनमें असाधारण है।

आपने कलाक्षेत्रम् में अपनी जो शिष्याएँ तैयार की है, उनमें श्रीमती राधा सर्वोपरि मानी जाती हैं।

नृत्य कला को फिर से जीवन दान देने में इन्होंने बहुत सहयोग दिया है। इनकी कला से आकृष्ट होकर राष्ट्रपति ने इन्हें नृत्य कला का प्रतिनिधित्व करने के लिए संसद-सदस्य भी चुना है।

मणिपुरी नृत्य

मणिपुरी नृत्य उत्तरी भारत का शास्त्रीय नृत्य है। मणिपुरी भारत के पूर्व में बहुत ही रमणीक स्थान है, जो कि चारों ओर घाटियों से घिरा हुआ है। मणिपुरी नृत्य के विषय में पौराणिक कथा प्रसिद्ध है कि एक समय शिवजी ने राधा और कृष्ण के रास को देखने की इच्छा प्रगट की। प्रथम तो कृष्ण भगवान ने दिखाने से मना किया किन्तु पश्चात् उनको चौकीदारी का भार सौंप दिया। नृत्य को देखकर जब भगवान् शंकर लौटे तब पार्वती जी उनके रात

भर गायब रहने पर बहुत अप्रसन्न हुईं और उन्होंने स्वयं ही रास लीला करने का निश्चय किया। उसके लिए जो स्थान चुना गया वह मणिपुरी था। उन्होंने नौ अप्सराओं का इस कार्य में सहयोग लिया। यही रास मणिपुरी में लाइहरोबा के नाम से प्रसिद्ध है। लाइहरोबा का अर्थ ईश्वर को प्रसन्न करना है। यह आठ दस दिन तक चलता है तथा अप्रैल और मई के महीने में अधिकतर किया जाता है।

मणिपुरी रास नृत्य बहुत प्रसिद्ध है। ऐसा कहा जाता है कि कर्त्ता महाराज को भगवान ने स्वप्न दिया था और रास का रहस्य बताया था। रास बहुत ही कमनीयता लिये हुये तथा बहुत ही आकर्षक वेषभूषा में किया जाता है। इसमें हरी स्कर्ट राधा पहनती है तथा लाल सखियाँ पहनती है। इसमें आठ सखियाँ होती हैं। महारास का भी प्रदर्शन कभी कभी किया जाता है।

अन्य नृत्य जो मणिपुरी में अधिक प्रचलित हैं वह कीर्तन खड़ताल, (चौलम) तथा आरती आदि हैं। मुखाबोली भी एक अत्यन्त प्रसिद्ध नृत्य है। इसमें पुरुष स्त्री दोनों साथ साथ नृत्य करते हैं। पुरुष के गले में खोल होता है जो साथ साथ बजाते हुए नृत्य करता जाता है। मणिपुरी नृत्य में अल्पदमा हस्त मुद्रा का बहुत प्रयोग होता है। इसके अंग संचालन बहुत ही लोच लिये हुये होते हैं तथा अधिकतर गोले में या अर्ध गोले में चलते हैं। यह पद्धति भारतीय शास्त्रीय नृत्यों में सबसे अधिक सुगम तथा जल्दी सीखी जा सकती है।



कथकलि मुद्रा

वेषभूषा—मणिपुरी की वेषभूषा बहुत ही आकर्षक, रंगीन तथा चमकदार होती है। स्थान-स्थान पर काँच आदि भी लगे रहते हैं। यह बहुत चमकते रहते हैं।

संगीत—मणिपुरी नृत्य के साथ खोल, खड़ताल और मजीरों का विशेष प्रयोग होता है। इस नृत्य में दादरा ताल की अधिकता रहती है तथा वही नर्तक को सर्व प्रथम सिखाई जाती है।

कथकलि

कथकलि केरल का शास्त्रीय नृत्य है। इसकी उत्पत्ति लगभग १६ वीं शताब्दी के आस पास मानी जाती है। कथकलि को पहले रामा नाट्य कहते थे क्योंकि इसमें रामायण की कथाओं का अधिकतर वर्णन होता था। कथकलि का अर्थ मलयालम् में निम्न प्रकार है। कथा का अर्थ कहानी और कलि का अर्थ खेल, सारांश यह है कि कहानी का वह रूप जो प्रदर्शन के द्वारा व्यक्त हो। कथकलि भारत का कठिन तथा पर्याप्त मात्रा में पूर्ण नृत्य है। इसमें सुन्दर साहित्य, मधुर संगीत, भाव-पूर्ण अभिनय इन सभी का समन्वय देखने व सुनने को मिलता है। इसकी कथाएँ सुखान्त व दुखान्त दोनों ही प्रकार की होती हैं। इसमें भिन्न भिन्न पक्षियों के नृत्य जैसे मयूर, कबूतर आदि भी प्रस्तुत किये जाते हैं। यह एक बहुत ही कठिन नृत्य है जिसमें प्रत्येक अंग प्रत्यंग के संचालन पर अधिकार करना पड़ता है।

११ से १४ वर्ष की अवस्था के बीच कथकलि विद्यार्थी को एक विशेष प्रकार के शारीरिक शिक्षा केन्द्र में प्रवेश करना पड़ता है, जहाँ वह गुरु-दीक्षा लेता है। इसमें सर्व प्रथम शरीर को लोचदार बनाया जाता है। इसके पश्चात् आँख, भौं, गर्दन आदि का संचालन सिखाया जाता है। अन्त में मुद्राओं का प्रयोग समझने पर ही एक नर्त्तक मंच पर आता है। कथकलि की हस्त मुद्रायें अधिकतर अभिनय दर्पण पर आधारित हैं। पूरी पूरी कहानियों को भी इसमें केवल मुद्रा और नयन भावों से प्रस्तुत कर दिया जाता है। इसका एक कार्यक्रम लगभग ७-८ घन्टे तक चलता है। रात्रि को नौ बजे के लगभग आरंभ होता है। सायंकाल से ही ढोल पीट कर इसकी घोषणा कर दी जाती है। सर्व प्रथम इसमें टूडिया प्रस्तुत किया जाता है, इसके पश्चात् भक्ति गान होते हैं पश्चात् कथाओं का वर्णन करते हैं। इसके पद संचालन को कलसम कहते हैं। महाभारत और रामायण की कथाओं का वर्णन भी अधिकतर होता है। इसको फिर से जीवन दान देने का कार्य कवि बैलथोल ने प्रचुर मात्रा में किया। उन्होंने केरल में एक स्कूल भी (केरल कला मंडलम्) के नाम से खोला जिसमें इस नृत्य का निखरा स्वरूप देखने को मिलता है, जिसे देख कर सब लोग प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। सारी डान्स भी कथकलि का एक प्रसिद्ध नृत्य है।

कथकलि नृत्य में पात्र तीन भागों में विभाजित होते हैं—
१. सात्विक, २. राजसिक, ३. तामसिक,

सात्त्विक पूज्य देवताओं के लिये।

राजसिक वीरत्व के लिए।
तामसिक राक्षस आदि के लिए।

संगीत—कथकलि नृत्य में संगीत का एक विशिष्ट स्थान है। इसमें नृत्य और संगीत का एक सुन्दर समन्वय दृष्टिगत होता है। इसमें ढोल, मृदंग तथा बांसुरी का प्रयोग किया जाता है। गायक की भी आवश्यकता पड़ती है। दो-दो तीन-तीन ड्रमों का प्रयोग किया जाता है जिससे उसी प्रकार का वातावरण उत्पन्न हो सके।

वेष-भूषा—कथकलि के शृंगार में काफी समय लगता है। चेहरे पर पुरुष पात्र मास्क पहनते हैं तथा स्त्री पात्री की वेष भूषा पुरुषों की अपेक्षा साधारण रहती है। जिस भाव को प्रकट करना होता है नर्त्तक उसी प्रकार का पाउडर प्रयोग करता है। औरतों की वेषभूषा का रङ्ग साधारण होता है।

आचार्य—इसके आचार्य श्री शंकर नम्बूदरी तथा गोपीनाथ जी हैं।

अध्याय—३

लोक-नृत्य तथा आधुनिक नृत्य

लोक-नृत्य किसी भी राष्ट्र के जागृति के प्रतीक होते हैं। किसी भावाभिव्यक्ति को उसकी प्राकृतिक अवस्था में प्रस्तुत कर देना ही लोक नृत्य कहलाता है। यह स्वयं को उल्लास दायक होता है। अर्थात् खुशी में जो स्वाभाविक अंग-संचालन हो उठते हैं और उनको यदि उसी प्रकार व्यक्त कर दिया जाय तो वह लोक नृत्य है। हर देश के, हर जाति के अलग अलग लोक नृत्य होते हैं। जब इन्हीं लोक नृत्यों को कलात्मक बना कर जन रुचि के लिए बना दिया जाता है तब वह शास्त्रीय नृत्य बन जाते हैं। शास्त्रीय नृत्यों का प्रारम्भ लोक नृत्यों से ही होता है। लोक नृत्य तीन प्रकारों में विभक्त हो सकते हैं। १. वीर भावना लिये हुए, २. विशेष उत्सवों पर एवं ३. समारोहों पर। निम्न कोटि की जातियों के भी भिन्न-भिन्न लोक नृत्य होते हैं।

आजकल प्रचलित लोक नृत्यों में निम्न बहुत प्रसिद्ध हैं—

गुजरात का गरवा, उड़ीसा का संथाल, सेरकिला का छाऊ, पंजाब का भांगरा तथा राजस्थान का गनगौर और घूमर।

गुजरात का गरवा—यह गुजरात का मुख्य लोक नृत्य है। यह विशेषतः नवरात्रि में किया जाता है। इसके नाम के



कु० इन्दु माया के रूप में प्रवेश करते हुए

विषय में कुछ लोग तो कहते हैं कि जो गाना गाया जाता है उसके नाम पर गरवा पड़ा अथवा कुछ का कहना है कि जो घड़े की पूजा होती है वह गरवी कहलाती है, उससे ही गरवा कहलाया। इसमें एक लड़की गाती है और उसको सहेलियाँ दुहराती हैं। गाते और नाँचते समय हाथ से ताली देती जाती हैं तथा एक तरफ को झुककर भिन्न-भिन्न प्रकार से नृत्य करती जाती हैं। इसके साथ ढोलक का प्रयोग होता है। इसके गीत बहुत सुन्दर तथा बहुत प्राचीन समय से चले आते हैं।

उड़ीसा का संथाल—यह उड़ीसा का लोक नृत्य है। इसे संथाल जाति के लोग करते हैं। पूर्णमासी के दिन ढोल पीटा जाता है और तब लड़की तथा लड़के नृत्य करने को घर से चल देते हैं। पहले आदमी आते हैं और नाँच प्रारम्भ होता है। इस नाँच में एक विशेषता होती है। नृत्य करते समय लड़कियाँ, लड़कों से बिलकुल मिलती नहीं हैं। इसमें विशेषकर फसल का काटना, शिकार के लिए तैयार होना तथा हास्य-रस में दो स्त्रियों का झगड़ा आदि प्रस्तुत किये जाते हैं।

सेरीकला का छाऊ—छाऊ नृत्य सिंहभूमि सेरीकला जो कि उड़ीसा में है उसका मुख्य लोक नृत्य है। यह चैत्र मास में किया जाता है। धार्मिक उत्सव के समय एक नर्तक अर्धनारी के रूप में पानी का घड़ा लेकर नदी पार से चलता है। उसके साथ-साथ ड्रम और शहनाई जलूस के रूप में बजती चलती हैं। राजा तथा उसके परिवार, जब जलूस वहाँ

पहुँचता है, तो उसकी ग्रावभगत करते हैं तथा उसको सम्मान देते हैं। उसके पश्चात् यह जलूस शिवजी के मन्दिर में जाता है तथा उसके तीन चक्कर देकर उसकी ग्रन्तिम विधि पूर्ण होती है। राजा के महल में चार रात्रि तक यह नृत्य चलता रहता है। प्रत्येक नर्तक को एक मास्क पहनाया जाता है इसको इनके यहाँ छाऊ बोलते हैं, इसलिए इसका नाम छाऊ नृत्य पड़ा है। इसके पहनने से ग्रभिनय करने व भाव-प्रदर्शन में कमी ग्रवश्य ग्रा जाती है तथा स्पष्टता नहीं रह पाती। इसके साथ नगाड़ा, ढोल तथा शहनाई बजती है। प्रारम्भ में छोटे कलाकार ग्रपना प्रदर्शन करते है, उसके पश्चात् प्रवीरण नर्त्तक ग्रपनी कला का प्रदर्शन देते हैं। छाऊ नृत्य में तलवार नृत्य ग्रति कठिन है। वहाँ के राजकुमार को भी यह नृत्य सीखना पड़ता है। महाराज सुरेन्द्र सिंह मयूर नृत्य करने में बहुत प्रवीरण थे, किन्तु ग्रब उनकी मृत्यु हो चुकी है। छाऊ नृत्य में ग्रुप तथा सोलो दोनों प्रकार के नृत्य किये जाते हैं।

राजस्थान का 'घूमर'—यह राजस्थान का लोक.प्रिय नृत्य 'घूमर' ग्रधिकतर होली या दिवाली जैसे मङ्गल उत्सवों पर किया जाता है। यह स्त्रियों का नृत्य है। इसमें चाहे जितनी स्त्रियाँ भाग ले सकती हैं। नृत्य की मुद्रायें बहुत ही सरल हैं। इसमें नर्त्तकियाँ गोले में घूमती रहती हैं ग्रौर गाने के साथ २ नृत्य चलता रहता है। उदयपुर, जोधपुर ग्रौर कोटा तीनों स्थानों में विभिन्न प्रकार के घूमर नृत्य प्रचलित हैं। इनमें से एक प्रकार में स्त्री ग्रौर पुरुष भी भाग लेते हैं।

पंजाब के हीर, लोढ़ी, भांगर, झूमर आदि प्रसिद्ध लोक नृत्य हैं। 'हीर' में प्रेम-कथा का वर्णन होता है। यह सब नृत्य बहुत ही मस्ती पूर्ण तथा उत्साह लिए हुए होते हैं।

आधुनिक नृत्य--कला समाज का दर्पण है। ज्यों-ज्यों युग करवट लेता जाता है उसके साथ-साथ कला भी अपना रूप उसी के अनुसार बदलती जाती है। कला केवल कला के लिए नहीं किन्तु उसका सम्बन्ध जीवन से भी है। इसी कारण आधुनिक नृत्य कभी भी किसी रूप में बँध करके नहीं रहते। जो उस समय की जग-जीवन की समस्याएँ होती हैं, उन्हीं को नृत्य में प्रकट करना ही आधुनिक नृत्यों के अन्तर्गत आता है। यह किसी प्रणाली विशेष में बँध कर प्रस्तुत नहीं किये जाते। इसमें कल्पना का भी आश्रय लेना पड़ता है। वैसे तो कल्पना का प्रत्येक नृत्य में प्रयोग करना पड़ता है किन्तु आधुनिक नृत्यों में इसका विशेष स्थान होता है। कल्पना के आधार पर ही इसमें अधिक सजीवता तथा आनन्द आता है।

इसमें संगीत वेष-भूषा तथा रोशनी का प्रयोग नृत्य के अनुसार ही कुशलता के साथ होना चाहिये। श्री उदयशंकर जी के 'मैशनरी एण्ड लेवर' तथा 'रिदिम आफ लाइफ' इसके सुन्दर उदाहरण हैं। ध्वनि (Sound affects) का भी नृत्य के साथ विशेष सम्बन्ध रहता है। संगीत और नृत्य का इस प्रकार सामंजस्य हो जाता है कि दर्शक-गण आनन्द विभोर हो उठते हैं।

सिनेमा क्षेत्र में भी Light dances या Oriental dances प्रस्तुत किये जाते हैं किन्तु उनका रूप विकृत सा रहता है।

केवल एक कोरस के साथ अंग-संचालन करते हुए कुछ लड़कियों को प्रस्तुत कर देते हैं। लड़कियाँ भी नृत्य में एक आदि को छोड़ कर विशेष दक्ष नहीं होती। सिनेमा में नृत्य प्रस्तुत करने का केवल एक ही अभिप्राय होता है कि अधिक से अधिक उसके द्वारा पैसा उत्पन्न करना और उसके लिये वह उस नृत्य को काफी कामुकता पूर्ण बनाने में भी नहीं चूकते। अभी कुछ चित्रपटों में ऐसा प्रयास किया गया है कि शास्त्रीय नृत्यों को उनमें प्रस्तुत किया गया है और वह सफल भी रहे हैं। सिनेमा क्षेत्र में नृत्यों के लिए बहुत क्षेत्र है और उसमें परिष्कृत नृत्यों को अच्छे कलाकारों द्वारा प्रस्तुत कराना चाहिए।

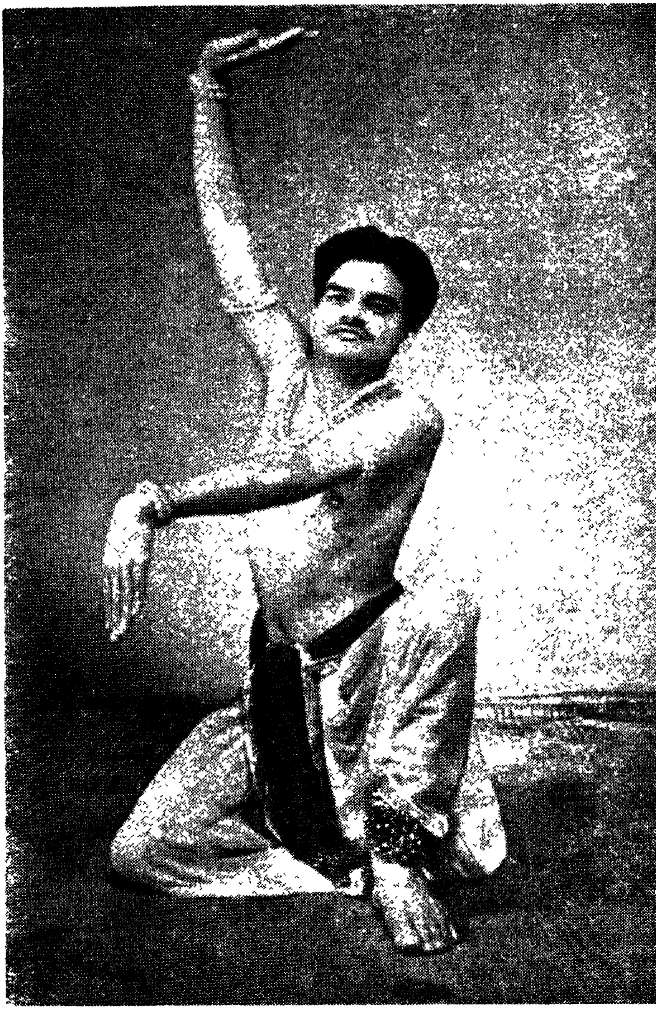
शान्ति निकेतन की नृत्य प्रणाली को भी हम इसके अन्त--र्गत ले सकते हैं, यद्यपि पाश्चात्य तथा मणिपुरी प्रणाली का उन पर काफी प्रभाव है।

जैसा ऊपर लिखा था श्री उदयशंकर जी ने नृत्य में एक नवीन प्रणाली का आविष्कार किया। आज हम उनकी जीवनी के विषय में थोड़ा सा प्रकाश डालते हैं।

उदयशंकर जी के पिता का नाम श्याम शंकर जी था। इनका जन्म उदयपुर में हुआ था। बचपन में इनको चित्रकला का बहुत शौक था। १९१७ में इनके पिता ने इनको बम्बई में J. J. Schools of Arts में भरती करा दिया। वहीं पर इन्होंने गन्धर्व महाविद्यालय में संगीत शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् इनके पिता ने इन्हें Royal College of Arts लन्दन में भरती

करा दिया और सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त की। आपको बचपन से ही नृत्य-कला से प्रेम था। १९२३ में रूस की प्रसिद्ध नर्तकी 'अनापावलोवा' से इनकी भेंट हुई तथा वे उसकी पार्टी में सम्मिलित हो गये, जहाँ इन्होंने कई नृत्यों का निर्देशन भी किया। जिसमें राधा-कृष्ण का नृत्य प्रसिद्ध है। इसके पश्चात् इन्होंने यह पार्टी छोड़ दी और स्वतन्त्र रूप में विष्णु पन्त शिरालय के सहयोग से पेरिस में कई प्रदर्शन दिये जो कि बहुत सफल रहे। इसके बाद इन्होंने और भी अनेक प्रदर्शन यूरोप और अमरीका में दिये, जिनसे इनको काफी ख्याति प्राप्त हुई। १९२९ में वे भारत वापस आ गये तथा कथकली नृत्य के आचार्य गुरु शंकर नम्बूदरी से नृत्य सीखा। यह अपने गुरु का विशेष आदर करते हैं। इन्होंने अल्मोड़ा के पास "इण्डियन कलचर" नाम की संस्था भी स्थापित की, जहाँ नृत्य की शिक्षा दी जाती थी किन्तु किन्हीं कारणों से यह न चल सकी। श्री उदयशंकर जी ने कल्पना नाम का चलचित्र भी बनाया किन्तु वह भी सफल नहीं रहा। प्रारम्भ में उनके साथ में मैडम सिमकी इनकी पार्टनर के रूप में कार्य करती थी किन्तु अब अम्लानन्दी इनके साथ कार्य करती हैं जिससे इन्होंने विवाह भी कर लिया है। इनके नृत्य अपनी विशेष प्रणाली लिए हुये होते हैं तथा दर्शक को उनमें पूर्ण आनन्द आता है।

श्री रामगोपाल जी भी आज के युग में आधुनिक नृत्य-कारों में अपना बहुत उच्च स्थान रखते हैं। यह चारों शास्त्रीय नृत्य प्रणालियों के ज्ञाता भी हैं। इन्होंने विदेश में भारतीय नृत्य को काफी ख्याति प्राप्त कराई है। इनके साथ में शैवन्ती पार्टनर के रूप में कार्य करती हैं।



लेखक [redacted] मुद्रा मे

नृत्य

अध्याय—४

रस भाव

★

नर्तक नृत्य में जिस रस को उत्पन्न करना चाहता है यदि वह परिपक्व अवस्था को पहुँच जाता है तो यही नर्तक की सबसे बड़ी सफलता है। भाव सदैव स्थित रहते हैं तथा उसके पश्चात् रस की उत्पत्ति होती है। जिस रस का प्रदर्शन करना होता है वैसी ही भावनायें चित्रित की जाती हैं। भाव दो प्रकार से व्यक्त होता है। (१) शरीर से तथा (२) मन से। रस नौ प्रकार के होते हैं:—

रस	भाव	रस	भाव
१. शृङ्गार	रति	२. हास्य	हास्य
३. करुण	शोक	४. रौद्र	क्रोध
५. वीर	उत्साह	६. वीभत्स	घृणा
७. भयानक	भय	८. अद्भुत	विस्मय
९. शान्त	निर्वेद		

कोई भी स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव या संचारी भाव के द्वारा परिपक्व अवस्था को पहुँचता है। स्थायी भाव को संचारी भावों द्वारा पोषण मिलता है। स्थायी भाव सदैव

स्थित रहते हैं और संचारी भाव उत्पन्न तथा नष्ट होते रहते हैं। नाट्य शास्त्र के अनुसार संचारी भाव ३३ प्रकार के माने गये हैं।

स्थायी भाव के अतिरिक्त विभाव दो प्रकार के हैं:—

१. आलम्बन। २. उद्दीपन।

१. आलम्बन—जिसको लेकर किसी स्थायी भाव की उत्पत्ति होती है उसे आलम्बन कहते हैं।

२. उद्दीपन—उस भावना को जगाने वाला साधन उद्दीपन कहलाता है।

भारतीय नृत्य में नौ रसों के भाव भिन्न-भिन्न मुद्राओं द्वारा व्यक्त किये जाते हैं।

१. शृंगार रस—इसमें यौन भावनाओं की प्रधानता रहती है। इसके दो स्वरूप हैं। (१) संयोग शृंगार—तथा (२) वियोग शृंगार। यह लास्य पूर्ण नृत्य है। इसमें मुख पर प्रसन्नता तथा दृष्टि बगल में रखनी पड़ती है।

२. हास्य रस—जिससे हंसी आये वही हास्य। इसमें भों को धनुषाकार बनाने के अतिरिक्त आँखों को जल्दी झपकाया जाता है। गर्दन तथा सिर के झटके दिये जाते हैं।

३. करुणा रस—यह रस विषाद का प्रतीक है। इसमें आँखें सिकोड़ कर होठ नीचे झुका दिये जाते हैं। होठ जब-तब हिलते भी रहते हैं।

४. रौद्र रस—यह क्रोध व निर्दयता का रस है। इसमें भों को ऊपर कर आँखों को फैला कर बेधने वाली दृष्टि डाली जाती है। दाँत पीसने के साथ ही कपोल भी कम्पित रक्खे जाते हैं।

५. वीर रस—शौर्य, पराक्रम आदि इसमें आते हैं। यदि आँखों को फैलाकर भों धनुषाकार बना दी जांय तथा सिर को गर्व के साथ उठाये रक्खा जाय तो वीर रस प्रगट होता है।

६. वीभत्स रस—यह घृणा व कुरूपता का परिचायक है। आँखों और भों को सिकोड़ कर थोड़ी-सी नीचे झुकाने से इस रस की अभिव्यक्ति होती है।

७. भयानक रस—आँखों को पूरा खोल कर पुतलियों को बारम्बार इधर-उधर घुमाने से भयानक रस का बोध होता है। इसमें सिर व गर्दन भी हिलाये जाते हैं।

८. अद्भुत रस—आश्चर्य का भान कराता है। इसमें भों को कमान की तरह बना दिया जाता है। आँखें भी साथ-साथ चलती हैं। होठ कुछ बाहर की ओर निकाल लिये जाते हैं।

९. शान्त रस—आँखें बन्द रखते हुये शान्त पूर्ण मुद्रा रखने से शान्त रस प्रगट होता है।

अध्याय—५

अंग उपांग तथा हस्त मुद्रायें संचालन

★

भारतीय नृत्य में हस्त मुद्रा तथा अंग, प्रत्यंग और उपांग का बहुत महत्व है। सम्पूर्ण कथा की कथा इनके द्वारा व्यक्त कर दी जाती है। इसके मूल दो शास्त्र हैं—भरतमुनि का नाट्य-शास्त्र तथा नान्दिकेश्वर का अभिनय दर्पण। इन दोनों शास्त्रों की मुद्राओं में पर्याप्त मात्रा में अन्तर है।

सिर संचालन

सिर संचालन गुरुजनों ने नौ प्रकार का माना है। किन्तु भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में १३ प्रकार के हैं—

१. **सम सिर**--जिस समय सिर की स्थिति सम हो तो वह सम सिर कहलाता है। इसका प्रयोग नृत्य के आरम्भ तथा पूजादि के अवसर पर होता है।

२. **उद्धाहित सिर**—जब सिर ऊपर उठा हो तो उसे उद्धाहित सिर कहते हैं। आकाश, ऊंची वस्तु बताने में इसका प्रयोग होता है।

अधोमुख—सिर नीचे की ओर झुकने से अधोमुख सिर होता है। लज्जा तथा नीचे की वस्तु उठाने आदि में इसका प्रयोग होता है।

४. आलोलित सिर—सिर को गोल घुमाने से 'आलोलित सिर' बनता है। यह मद, विकट हँसी, पिशाच ग्रसित आदि भावों के लिये आता है।

५. धुत सिर—सिर जब अगल-बगल घूमता है तो वह धुत सिर कहलाता है। हाँ और न कहने में इसका प्रयोग होता है।

७. कम्पित सिर—सिर ऊपर नीचे करने से कम्पित सिर होता है। किसी को बुलाने में अथवा प्रश्न करने में इसका प्रयोग किया जाता है।

७. परावृत्त सिर—सिर को एक ओर मोड़ देने से परावृत्त सिर बनता है। अनादर, क्रोध आदि में इसका प्रयोग करते हैं।

८. उत्क्षिप्त सिर—सिर को एक ओर मोड़ कर ऊपर उठाने से उत्क्षिप्त सिर होता है। सहायता तथा किसी चीज को स्वीकार करने में इसका प्रयोग होता है।

९. परिवाहित सिर—सिर को एक ओर से दूसरी ओर हिलाना परिवाहित सिर कहलाता है। विरह, देवताओं की स्तुति आदि में इसे काम में लाते हैं।

ग्रीवा संचालन

नाटयशास्त्र के अनुसार नौ प्रकार के ग्रीवा संचालन हैं, जब कि अभिनय दर्पण में केवल चार ही प्रकार के ग्रीवा संचालन बनाये हैं। १. सुन्दरी, २. तिरश्चीना, ३. परिवर्तिता, ४. प्रकम्पिता।

१. सुन्दरी—गर्दन को इधर-उधर समतल रूप में चलाने को सुन्दरी ग्रीवा कहते हैं।

२. तिरश्चीना—साँप की चाल की भाँति गर्दन ऊपर उठाकर हिलाने को तिरश्चीना ग्रीवा कहते हैं।

३. परिवर्तिता—दाहिने बांयें अर्धचन्द्र की तरह ग्रीवा चलाने को परिवर्तिता ग्रीवा कहते हैं।

४. प्रकम्पिता—कबूतर की भाँति आगे-पीछे गर्दन चलाने को प्रकम्पिता ग्रीवा कहते है।

दृष्टि भेद

नाट्य शास्त्र में दृष्टि भेद बहुत ही वृहद् रूप से तथा विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। उन्होंने उसमें रस स्थायी तथा संचारी भाव सबकी अलग-अलग दृष्टियों का वर्णन किया है। अभिनय दर्पण में आठ प्रकार के दृष्टि-भेद लिखे हैं।

१. सम, २. आलोकित, ३. साची, ४. प्रलोकित, ५. मीलित ६. उल्लोकित, ७. अनुवृत, ८. अवलोकित।

१. **सम**—सीधे बिना पलक घुमाये देखने को सम दृष्टि कहते हैं । इसका प्रयोग नृत्य के प्रारम्भ में तथा पूजादि करने में होता है ।

२. **आलोकित**—पूरी आँख खोलकर घुमाते हुए देखने को आलोकित दृष्टि कहते हैं । याचना के लिए इसका प्रयोग होता है ।

३. **साची**—आँख के कोनों से देखने को साची दृष्टि कहते हैं ।

४. **प्रलोकित**—एक ओर से दूसरी ओर देखने को प्रलोकित दृष्टि कहते हैं ।

५. **मीलित**—यदि आँखें अधखुली हों तो उसे मीलित दृष्टि कहते हैं । इसका प्रयोग ध्यान, नमस्कार आदि में होता है ।

६. **उल्लोकित**—ऊपर की ओर देखने को उल्लोकित दृष्टि गुरुजनों ने कहा है ।

७. **अनुवृत्त**—ऊपर-नीचे जल्दी-जल्दी देखने को अनुवृत्त दृष्टि कहते हैं, जिसका प्रयोग क्रोध आदि दिखाने में किया जाता है ।

८. **अवलोकित**—नीचे की ओर देखने को कहते हैं । विचार की मुद्रा में इसका प्रयोग होता है ।

भौं संचालन गुरुजनों ने षष्ट प्रकार का बताया है । १. साहजा, २. पथिता, ३, उत्सिक्ता, ४. चतुर, ५. रिचता और ६. कुञ्चिता । इसके उपरान्त अष्ट प्रकार की गतियों का

भी वर्णन मिलता है जिनके नाम इस प्रकार हैं। गजगति, तुरंग गति, सर्प गति, मयूर गति, हंस गति, मीन गति, कुक्कुर गति तथा हिरन गति ।

अभिनयदर्पण के अनुसार सात प्रकार के भ्रमरी के भेदों का वर्णन मिलता है। उत्प्लुत, चक्र, गरुड़, एकपाद, कुञ्चित, आकाश तथा अङ्ग भ्रमरी ।

१. **उत्प्लुत भ्रमरी**—समपाद मण्डल की स्थिति द्वारा सम्पूर्ण अङ्गों के साथ उछलकर ऊपर ही ऊपर नर्तन करें तो उत्प्लुत भ्रमरी बनती है।

२. **चक्र भ्रमरी**—त्रिपताका हस्त के प्रदर्शन के साथ भूमि पर पैर रखकर वेग के साथ घूमने की स्थिति को चक्र भ्रमरी कहते हैं।

३. **गरुड़ भ्रमरी**—एक पैर को तिरछा करके दूसरे पैर पर फैलाकर, घुटना भूमि पर टेक कर तथा दोनों हाथों को फैलाकर घूमने की स्थिति को गरुड़ भ्रमरी कहते हैं।

४. **एकपाद भ्रमरी**—शीघ्रता पूर्वक पहले एक पैर पुनः दूसरे पैर पर स्थित होकर घूमने की स्थिति को एकपाद भ्रमरी कहते हैं।

५. **कुञ्चित भ्रमरी**—घुटनों को सिकोड़ कर घूमने की स्थिति को कुञ्चित भ्रमरी कहते हैं।

६. **आकाश भ्रमरी**—दोनों पैरों को पूरी तरह फैलाकर तथा दूर-दूर पर रख कर पहले कूदे पुनः वेग के साथ घूमें तो उसे आकाश भ्रमरी कहते हैं।

७. अङ्ग भ्रमरी—दोनों पैरों को १२ अंगुल की दूरी पर रख कर कूदे, पुनः रुक जाये तो अङ्ग भ्रमरी बनती हैं।

इसके उपरान्त पाँच प्रकार के उत्प्लवन (उछलना) के भेदों का भी वर्णन मिलता है यथा-अलग, कर्तरी, अश्व, मोटित और कृपालग।

१. अलगोत्प्लवन—शिखर हस्त को मुद्राओं वाले दोनों हाथ कटि पर स्थित हों तथा दोनों पैरों द्वारा उत्प्लवन हो तो उसे अलगोत्प्लवन कहते हैं।

२. कर्तरी—दोनों हाथों से कर्तरी हस्त की मुद्रायें, बांयें पैर की पीछे करके उत्प्लवन किया जाये तो कर्तरी उत्प्लवन कहलाता है।

३. अश्वो—पहले दोनों पैरों द्वारा उत्प्लवन करे पीछे दोनों पैरों को बराबर सम स्थिति में रख कर हाथों द्वारा त्रिपताका हस्त की मुद्रायें बताये तो अश्वोत्प्लवन बनता है।

४. मोटित—यदि दोनों पाश्व में कैंची की भांति उत्प्लवन करे एवं हाथों द्वारा त्रिपताका हस्त की मुद्रायें प्रदर्शित हो तो उसे मोटित उत्प्लवन कहते हैं।

५. कृपालगोत्प्लवन—एक के बाद दूसरी एड़ी कमर तक ले जाकर, दोनों के बीच में, हाथों द्वारा अर्धचन्द्र कला हस्त प्रदर्शित करे तो उसे कृपालगो उत्प्लवन कहते हैं।

नाट्यशास्त्र के अनुसार १०८ अंग-संचालन के भेद बताये हैं जो कि करण कहलाते हैं। दो या तीन करण मिल करके अंगहार बनते हैं। दक्षिण में चिदम्बरम मन्दिर में १०८ करनों के चित्र हैं। अभी श्री गोपीनाथ जी ने भी एक पुस्तक निकाली है जिसमें १०८ करन मय चित्रों के दिये हुये हैं।

हस्त मुद्रायें

यतो हस्तस्ततो दृष्टिर्यतो दृष्टिस्ततो मनः।
यतो मनस्ततो भावो यतो भावस्ततो रसः॥

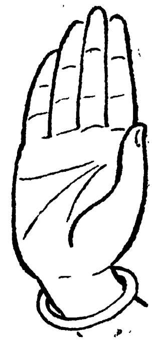
(अभिनय दर्पण)

(जहाँ हाथ जाये दृष्टि भी उधर जावे, जहाँ दृष्टि जाये मन साथ-साथ जाये, जहाँ मन जाये भाव साथ रहे, जहाँ भाव है वहाँ रस उत्पन्न हो जाता है।)

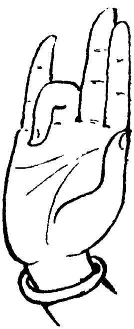
हस्त मुद्रायें दो प्रकार की होती हैं। एक असंयुक्त तथा दूसरी संयुक्त मुद्रायें। असंयुक्त मुद्रायें वह हैं जिनमें एक हाथ का प्रयोग होता है तथा संयुक्त में दोनों हाथों का प्रयोग होता है। नाट्य शास्त्र तथा अभिनय दर्पण इन दोनों की हस्त मुद्राओं में पर्याप्त मात्रा में अन्तर है।

हस्त की उंगलियों के इस प्रकार नाम दिये गये हैं। १. अंगूठा, २, तर्जनी (अंगूठी के पास वाली) ३. मध्यमा (बीच की सब से बड़ी) ४. अनामिका (मध्यमा के पास वाली) ५- कनिष्टका (सब से छोटी उंगली)

अब हम सर्व प्रथम असंयुक्त हस्त मुद्राओं का वर्णन करेंगे।



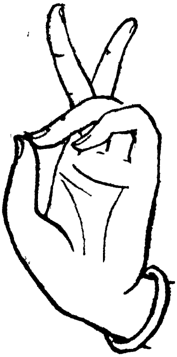
१. **पताका**—पाँचों उँगलियाँ सीधी फैली हुई हों तो वह पताका मुद्रा कहलाती है। इसका प्रयोग नृत्य के प्रारम्भ में, बादलों के लिए तथा लहरों के लिए होता है।



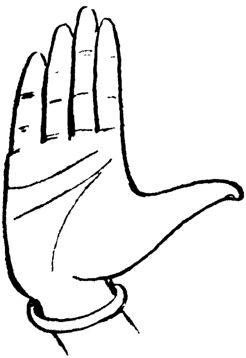
२. **तिरपताका**—पताका मुद्रा में यदि अनामिका उँगली नीचे झुकादी जाय तो यह तिरपताका मुद्रा बनती है। इसका प्रयोग मुकुट, इन्द्र तथा घोड़े के मलने आदि में होता है।



३. **अर्धपताका**—यदि कनिष्टका तथा अनामिका उँगली पताका मुद्रा में झुकादी जाय तो वह अर्ध पताका मुद्रा कहलाती है। इसका प्रयोग नदी का किनारा, चाकू आदि को व्यक्त करने में होता है।



४. कर्तरी मुख--यदि तर्जनी और मध्यमा उँगली आगे-पीछे कर लें तथा शेष उँगलियाँ झुकाकर अंगूठे को उनसे मिलादें तो कर्तरी मुख मुद्रा बनती है। इसका प्रयोग कैंची, हाथी, हिरन तथा मृत्यु आदि को व्यक्त करने में होता है।



५. अर्ध चन्द्र--यदि सब उँगलियों को फैला दिया जाय और अँगूठा उससे अलग कर दिया जाय तो अर्ध चन्द्र मुद्रा बनती है। इसका प्रयोग सोचने वालों को बाँधने में, हाथी के कानों तथा माला आदि बताने में होता है।



६. अरल—यदि तर्जनी को झुकाकर अंगूठे से मिला दिया जाय तथा शेष तीनों उँगली फैली रहें तो अरल मुद्रा बनती है। इसका प्रयोग जल्दी बुलाने में तथा अमृत और जहर पीने में एवं पसीना पोंछने में होता है।

७. मुष्टी—अँगूठा दबा हुआ तथा चारों उँगलियाँ झुकी हुई रहती हैं। इसका प्रयोग दौड़ने, किसी चीज को पकड़ने तथा कुश्ती लड़ने आदि में होता है।

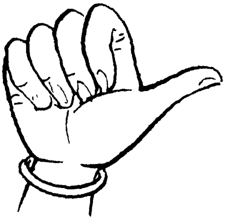


८. दृढ़ मुष्टी—यदि अँगूठा को मुष्टी मुद्रा में उँगलियों से दबा दिया जाय तो दृढ़ मुष्टी मुद्रा बनती है। इस मुद्रा को छाता पकड़ने के लिए काम में लाते हैं।

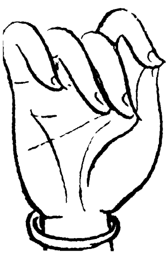


९. पल्लव—यदि चारों उँगलियाँ क्रमानुसार भीतर की ओर झुकी हों तो पल्लव मुद्रा बनती है। इसका प्रयोग प्रश्न पूछने में होता है।

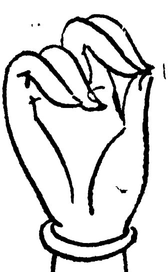




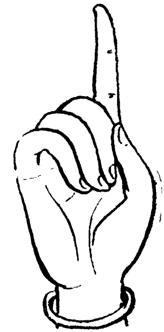
१०. शिखर—यदि अंगूठा खड़ा रहे तथा अन्य सब उँगलियाँ बंधी रहें तो शिखर मुद्रा बनती है। इसका प्रयोग कमान तथा अन्य शस्त्रों को पकड़ने में होता है।



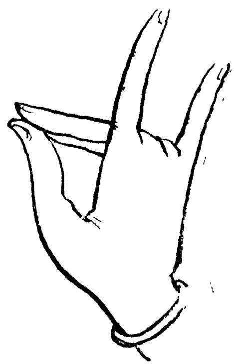
११. कपित्थ हस्त—शिखर हस्त की पहली उँगली यदि टेढ़ी होकर अंगूठे के अग्रभाग पर झुकी हो तो उसे कपित्थ हस्त कहते हैं। इसका प्रयोग घूँघट हटाने दूध दोहने आदि में होता है।



१२. कटकमुख—यदि कपित्थ-हस्त की पहली और बीच की उँगलियाँ अंगूठे के ऊपर हों तो कटक मुख मुद्रा बनती है। बांसुरी बजाने में, फ़ूल तोड़ने में तथा वीणा पकड़ने में इसका प्रयोग होता है।



१३. सूची मुख—यदि पहली उँगली खड़ी रहे तथा शेष उँगलियाँ बन्द रहें तो सूची मुख मुद्रा बनती है। इसका प्रयोग नृत्य में, संसार के दिखाने में तथा घेरा बताने में होता है।



१४. मृगशीर्ष—यदि तर्जनी और कनिष्टका खड़ी रहे तथा मध्यमा और अनामिका अँगूठे से मिली रहे तो मृगशीर्ष मुद्रा बनती है। यह हिरन, बांसुरी बजाने तथा प्रेमिका को बुलाने में इसका प्रयोग होता है।



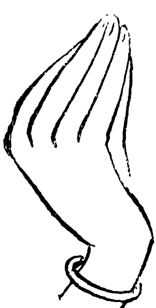
१५. भ्रमर—यदि मध्यमा तथा अंगूठा मिलादें तथा तर्जनी अन्दर की ओर झुकी रहे तथा अन्त की दो उँगलियाँ थोड़ी-सी अलग उठी रहें तो भ्रमर मुद्रा बनती है। इसका प्रयोग भ्रमर के लिए फ़ूल तोड़ने तथा उड़ने वाले पक्षियों के लिए भी होता है।



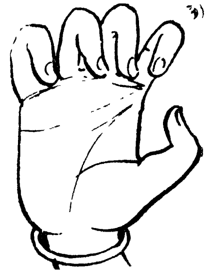
१६. **चतुर**—यदि मृगशीर्ष हस्त के अंगूठे को तीसरी उँगली को नीचे के हिस्से पर रख दिया जाय तो वह चतुर हस्त मुद्रा बनती है। इसका प्रयोग नृत्य में तथा नैनों से चालाकी में व्यक्त करने में होता है।



१७. **सर्पशीर्ष**—यदि पताका हस्त की साँप के फन के अनुसार उँगलियाँ जरा झुकादी जांय तो वह सर्पशीर्ष मुद्रा बनती है। इसका प्रयोग सर्प, पानी को छिड़कने में, या कोई चीज लेने और देने में होता है।



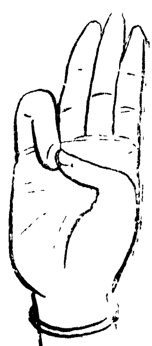
१८. **मुकुल**—यदि समस्त उँगलियाँ और अँगूठा पास लाकर मिला दिया जाय तो मुकुल मुद्रा बनती है। इसका प्रयोग कली, किसी चीज को पकड़ने और घृणा आदि व्यक्त करने में होता है।



१६. उड़नव—यदि सब उँगलियाँ थोड़ी-सी अन्दर झुकी रहें तथा ये सब अलग-अलग रहें तो उड़नव मुद्रा बनती है। इसका प्रयोग राक्षसों को, मकड़ियों तथा सिर को खुजलाने में होता है।



२०. हंसास्य—यदि पहली और दूसरी उँगली फैली रहे तथा अँगूठा उस के नीचे लगा रहे, तथा अन्य उँगलियाँ खड़ी रहें तो हंसास्य मुद्रा बनती है। इसका प्रयोग नृत्य में हार को पकड़ने में तथा तस्वीर बनाने में होता है।

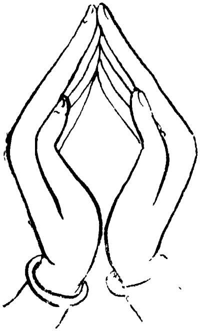


२१. त्रिशूल—तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को खड़ा रक्खा जाय तथा अँगूठा और कनिष्टका को नीचे झुका दिया जाय तो त्रिशूल मुद्रा बनती है। इसका प्रयोग तीन व्यक्त करने में, तथा त्रिशूल बताने में होता है।

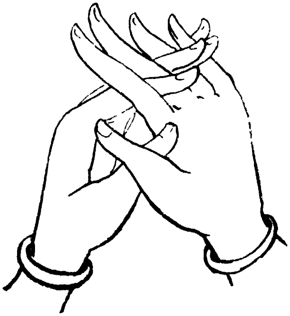
संयुक्त हस्त मुद्रायें

१. अंजली—यदि पताका हस्तों को मिला दिया जाय साथ ही हथेली मिली रहे तो अंजली मुद्रा बनती है । इसका प्रयोग नमस्कार करने में होता है । देवता और गुरु के लिए सिर से ऊपर, बादशाह तथा राजा महाराजाओं के लिए मुख के सम्मुख ।





२. कपोत—जब दोनों पताका हस्त नीचे ऊपर और बगल में परस्पर मिले हों तो कपोत हस्त कहते हैं। इसका प्रयोग नमस्कार करने के लिये होता है ।



३. करकटा—यदि दोनों हाथों की उंगलियाँ एक दूसरे से मिली रहें तथा बाहर निकली रहें तो करकटा हस्त बनता है । इसका प्रयोग अँगड़ाई लेने में, शंख फूंकने में तथा नीचे की ओर खींचने में होता है ।

४. स्वस्तिक--यदि दोनों पताका हस्त एक दूसरे के विमुख करके कलाई पर मिला दिये जांय तो स्वस्तिक हस्त बनता है। इसका प्रयोग घड़ियाल, झगड़ा आदि बताने में होता है।

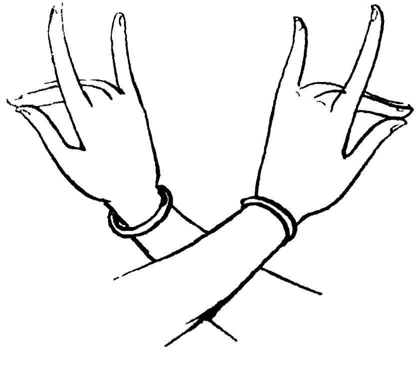
५. डोला—दोनों पताका हस्त जांघ पर रक्खे हों तो डोला हस्त बनता है। इसका प्रयोग नृत्य के प्रारंभ करने में होता है।

६. पुस्पुट हस्त—



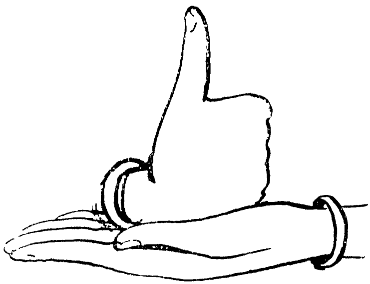
यदि सर्पशीर्श हस्त परस्पर मिले हों तो पुस्पुट हस्त बनता है। इसका प्रयोग फल, पुष्प चढ़ाने तथा आरती करने में होता है।

७. उत्संग-



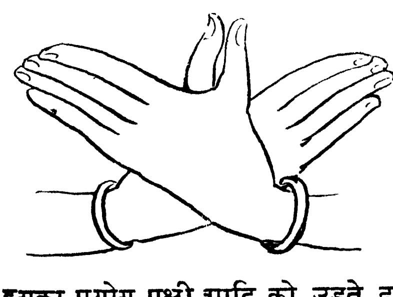
यदि मृगशीर्श हस्त विपरीत करके बताये जांय अर्थात् बांये को दांये की ओर और दांये को बांये की ओर तब उसको गुरुजन उत्संग हस्त

कहते हैं। इसका आलिंगन, आभूषण पहनाने, बालकों को शिक्षा देने आदि में प्रयोग होता है।



८- शिवलिंग–

सीधे शिखर हस्त को बांये पताका हस्त पर रखने से शिवलिंग मुद्रा बनती है।

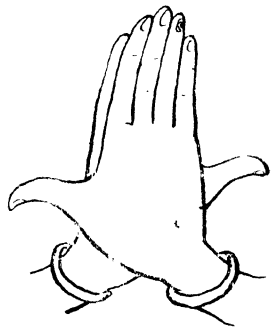


९. गरुड़ हस्त–

यदि अर्ध चन्द्र हस्त अंगूठे से मिला कर बगल की ओर फैला दिये जांय तो गरुड़ हस्त बनता है।

इसका प्रयोग पक्षी आदि को उड़ते हुये बताने में होता है।

१०. **मकर**—एक हाथ दूसरे हाथ के पृष्ठ भाग पर रख कर दोनों अंगूठों को फैला देने से मकर हस्त बनता है।



इसके उपरान्त नाटच शास्त्र में नृत्य हस्तों का भी वर्णन मिलता है। इनके संचालन पाँच प्रकार के होते हैं। ऊपर नीचे, दांयी, बांयी तथा सामने हस्त संचालन सदैव पद संचालन के अनुसार या पद संचालन हस्त संचालन के अनुसार ही होना चाहिए।

भारतीय नृत्य में देवताओं, नदियों तथा वृक्षों तक के लिये अलग-अलग मुद्रायें निश्चित हैं।

शिव हस्त—बांये हाथ में मृगशीर्ष तथा दाहिने हाथ में तिरपताका हस्त की मुद्रायें को शिव हस्त कहते हैं।

पार्वती हस्त—यदि बांया हाथ ऊपर उठा हुआ अर्ध चन्द्र हस्त को तथा दोनों हाथ अभयदान और वरदान देने की मुद्रा में हों तो उसे पार्वती हस्त कहते हैं।

ब्रह्म हस्त—बांये हाथ से चतुर तथा दाहिने में हंसास्य हस्त द्वारा ब्रह्म की मुद्रा बनती है।

विष्णु हस्त—यदि दोनों हाथों में त्रिपताका हस्त की मुद्रायें हो तो उसे विष्णु हस्त कहते हैं।

सरस्वती हस्त—दाहिना हाथ सूची तथा बांया कंधे के बराबर ऊपर उठा हुआ हो तो सरस्वती हस्त कहते हैं।

लक्ष्मी हस्त—यदि कंधे के बराबर उठे हुए दोनों हाथों में कपित्थ हस्त की मुद्रायें प्रदर्शित की जायें तो लक्ष्मी हस्त कहते हैं।

इन्द्र हस्त—यदि एक हाथ में त्रिपताका तथा दूसरे हाथ में स्वस्तिक हस्त हो तो उसे इन्द्र हस्त कहते हैं।

यम हस्त—यदि बांये हाथ में पाश एवं दाहिने हाथ में सूची हस्त प्रदर्शिती हो तो यम हस्त बनता है।

कुवेर हस्त—बायें हाथ में पद्म तथा दाहिने हाथ में गदा हो तो उसे कुवेर हस्त कहते हैं।

दम्पति हस्त—जब बांयें हाथ में शिखर एवं दाहिने हाथ में मृगशीर्ष हस्त की मुद्रायें हों तो उसे दम्पति हस्त कहते हैं।

इस प्रकार अनेक मुद्रायें भारतीय नृत्य की विशेषता रही हैं। आज की नवीन आविष्कारों की अलग-अलग मुद्रायें बन सकती हैं। जैसे यदि हवाई जहाज का उड़ना हमें दिखाना है तो उसको गरुड़ हस्त के द्वारा बड़ी आसानी से व्यक्त कर सकते हैं।



लेखक कृष्ण मुद्रा में

अध्याय—६

कत्थक नटवरी नृत्य पर एक विवेचनात्मक अध्ययन

★

मेरा यह विश्वास है जैसा कि मैंने गत अध्यायों में भी लिखा है कि कत्थक नृत्य की उत्पत्ति ब्रज की रास लीला से ही हुई है । इस कारण सर्व प्रथम मैं ब्रज की रास लीला के विषय में थोड़ा सा लिखूंगा ।

ब्रज की रास लीला का नृत्य में एक विशेष स्थान है । इसको भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है । ब्रज में पूर्ण चाँदनी रात्रि को जब कृष्ण कन्हैया ने बांसुरी बजाई तो गोपियाँ अपने घर छोड़-छोड़ कर कृष्ण के पास आ गईं और जब कृष्ण ने उनसे कहा कि मैंने तो तुम्हें केवल इस चांदनी रात में देखने भर को बुलाया था अब तुम सब घर लौट जाओ तब गोपियाँ बोलीं कि हम तो सब घर बार छोड़ कर यहाँ आई हैं अब कहाँ जांय और तब कृष्ण भगवान ने इस रासलीला का निर्माण किया । आजकल जिस प्रकार की रासलीला ब्रज की मंडलियाँ प्रस्तुत करती हैं उसका स्वरूप इस प्रकार है:—

मर्व प्रथम सिंहासन पर बालक कृष्ण-राधा तथा दो या चार सखियाँ बन कर विराजते हैं। बीच में श्रीकृष्ण, उनके बांई ओर श्री राधा जी तथा दोनों ओर सखियाँ रहती हैं। उसके आगे स्टेज होती है। एक तरफ वाद्य वादक तथा गायक बैठते हैं। इनमें एक स्वामोजी होते हैं जो इन सबके प्रमुख कहलाते हैं। अब रास का आरम्भ होता है।

सर्व प्रथम स्वामी जी उठ कर श्री कृष्ण, राधिका तथा सखी वृन्द सबके चरण छूते हैं, फिर अपने स्थान पर आकर मंगलाचरण बोलते हैं।

मंगलाचरण के पश्चात् थोड़ा सा गायन चलता है और बाद में आरती होती हैं। एक सखी आरती उतारती है अन्य सब हाथ जोड़ कर भगवान के आगे खड़े हो जाते हैं तथा आरती गाते हैं:—

"आरती युगल किशोर की कीजै
तन मन धन न्यौछावर कीजै"।

इसके पश्चात् आरती की थाली को वह मनुष्य लेकर सब को देता है और स्वामी जी तथा अन्य गाते रहते हैं। गीत के पश्चान् सखियाँ ठाकुर जी (कृष्ण भगवान्) से नृत्य करने को कहती हैं।

नृत्य प्रारम्भ होता है। श्री जी (राधिका) ठाकुर के गले में बांह डाल देती हैं और श्री ठाकुर जी श्री जी के गले में गल

बैंया डाले हुये दोनों उठकर नीचे रास करने को आ जाते हैं।

स्वामी जी गाते जाते हैं और श्री जी, ठाकुर जी तथा सखियाँ नृत्य करती रहतो हैं। अब मैं यहाँ पर कुछ दोहे कवित्त तथा बोल जो इस समय यहाँ लेते हैं, लिखूंगा:—

१. नाचत रास में रास बिहारी, नचवत हैं बृज की सब नारी।
तादीम तादीम तत तत थेई थेई थुगन थुगन देत गति न्यारी॥

२. तिकट तिकट धिलांग धिकतक तोदीम धिलांग तकतो।
तिकट तिकट धिलांग धिकतक तोदीम धिलांग तकतो॥
ता धिलांग धिग धिलांग धिकतक तोदीम तोदीम धेताम धेताम
धिलांग धिलांग धिलांग तक गदगिन थेई।
तत तता थेई तत तता थेई तत तता थेई॥

३. तक तक तक झुन झुन जै जै कक्कू क्ड़ान न कुझय।
तक तक तक झुन झुन जै जै कक्कू क्ड़ान न कुझय॥
गिड़गिड़ ताता गिड़गिड़ ताता थुंगा गिड़ता गदगिन थेई।
तत तता थेई तत तता थेई तत तता थेई॥

इस प्रकार और भी अनेक बोल बराबर, दुगन और चौगुन तक में लिये जाते हैं। घुटनों के बल तथा खड़े होकर चक्कर भी लिए जाते हैं। इसके पश्चात् थोड़ा सा विश्राम होता है और गायक और वादक गाते रहते हैं फिर स्वामीजी "तत तता थेई" बोलते हैं जो फिर से नृत्य प्रारम्भ होने का सूचक है। अब डंडे से नृत्य प्रारम्भ होता है। श्रीजी तथा ठाकुरजी बीच में रहते हैं तथा सखियाँ चारों ओर। इस प्रकार से रासलीला चलती रहती है।

रासलीला के अन्दर नृत्त, नाट्य का पूर्ण सामंजस्य देखने को मिलता है। उपरोक्त पद्धति से अब यह भली भाँति समझा जा सकता है कि आज की कत्थक नृत्य शैली में तथा ब्रज की रासलीला की पद्धति में कितनी समानता उपस्थित है, इसलिए कत्थक नृत्य की उत्पत्ति ब्रज की रासलीला से ही माननी चाहिए। जो कुछ बदला हुआ रूप दीखता है वह राजनैतिक प्रभावों का ही फल है। उत्तरी भारत में सबसे अधिक विदेशी आये और इस कारण यहाँ की संस्कृति पर उनका सबसे अधिक प्रभाव पड़ा।

रासलीला में जिस प्रकार के बोल और कवित्त लिये जाते हैं वही आज भी कत्थक नृत्य में प्रचलित हैं। इतना अवश्य है कि इन में बहुत से बोल भिन्न-भिन्न लयकारियों के बढ़ते चले गये हैं।

दूसरे कत्थक नृत्य का नाम पहले नटवरी नृत्य ही था। शंकर भगवान् को नटराज तथा कृष्ण भगवान् को नटवर कह कर पुकारा जाता है। संभवतः इसी कारण इस शैली के नृत्य का नाम नटवर से नटवरी नृत्य पड़ा होगा। रासलीला में जितने भी पद संचालन अथवा मंडलों का प्रयोग होता है वह भी कत्थक नृत्य के पद संचालन तथा चक्करों से समानता रखता है। इस सबके भी उपरान्त कत्थक नृत्य के अन्दर जितने भी गत भाव लिये जाते हैं वह सब कृष्ण की लीलाओं पर ही अधिकतर आधारित होते हैं। इन सब कारणों से ही यदि यह कहें कि आज का कत्थक नृत्य की पद्धति ब्रज की रासलीला का ही रूप है तो अनुचित न होगा।

अब मैं आज का जो कत्थक नृत्य का रूप प्रचलित है, उसके विषय में थोड़ा-सा और लिखूँगा। आज के कत्थक नृत्य का नृत्त भाग बहुत विकसित है। प्रत्येक बोल के सम पर तालियों की गड़गड़ाहट हो उठती हैं। पैर की तैयारी तथा उससे शुद्ध बोल निकालने पर अधिक बल दिया जाता है किंतु अङ्ग संचालन को सुडौल तथा उसके अन्दर नवीनता लाने का प्रयत्न कम करते हैं। कलाकार भिन्न-भिन्न प्रकार की लयकारियों में ही फँस कर रह जाते हैं किन्तु यह नहीं जानते कि समाज में कितने ऐसे व्यक्ति हैं जो लयकारियों को सूक्ष्मता के विषय में समझते हैं। अङ्ग संचालन ऐसी वस्तु है जिसको प्रत्येक व्यक्ति देख सकता है तथा प्रशंसा कर सकता है। इसके भी उपरान्त कत्थक नृत्य में नृत्त भाग को आजकल अधिक समय तक प्रस्तुत किया जाता है। भाव तथा अभिनय के काम को तो बहुत कम ही कलाकार प्रस्तुत करते हैं और यदि प्रस्तुत भी करते हैं तो भावों की झलक मात्र, जैसे कृष्ण की बांसुरी, राधा की गगरी आदि। यह नहीं है कि पूरी कृष्ण की लीलाओं को अथवा अन्य कथाओं को प्रस्तुत किया जाय। इसका परिणाम यह होता है कि दर्शकगण बोल और टुकड़ों के काम को देखते-देखते उकता जाते हैं, कारण लयकारी का काम गणित का-सा काम है जिसका मस्तिष्क से सम्बन्ध रहता है तथा भाव का हृदय से है।

कत्थक नृत्य में शृङ्गार-रस की ही बाहुल्यता है। अन्य रस तो नहीं के बराबर हैं। नृत्य के अन्दर नव-रसों का समावेश होना

चाहिए। उत्तरी भारत के संगीत के साथ सबसे अधिक सामंजस्य रखने वाला केवल कत्थक नृत्य ही है। इसके अन्दर नयी-नयी मुद्रा में पद संचालन तथा भावों का समावेश करना चाहिए जिससे कि यह जन-हित की वस्तु बन सके, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिये कि अपनी प्राचीन शैली को ही बदल दिया जाय। कला की आत्मा को सुरक्षित रखते हुए केवल युग की पुकार के साथ जहाँ आवश्यक है उसकी ऊपरी बातों में परिवर्तन ले आना चाहिए। कत्थक शैली पर नवीन बैलटों का भी निर्माण होना आवश्यक है।

द्वितीय खंड

*



कु० इन्दु भरतनाट्यम् मुद्रा मे

कत्थक नृत्य में आने वाले शब्दों की परिभाषा

★

लय

संगीत में समय की गति को लय कहते हैं। गायन, वादन तथा नृत्य में समय की चाल की कोई न कोई गति अवश्य होती है, वही लय है। लय तीन प्रकार की होती है।

१. विलम्बित लय।
२. मध्य लय।
३. द्रुत लय।

१. विलम्बित लय—बहुत धीमी लय को विलम्बित लय कहते हैं। यदि हम हाथ से ताली दें और एक के बाद दूसरी ताली बहुत देर में लगायें तब उसकी गति धीमी कहलायेगी और उसी को हम विलम्बित लय कहेंगे।

२. मध्य लय—मध्य लय न बहुत तेज होती है न बहुत धीमी। बीच की लय को मध्य लय कहते हैं, यह विलम्बित लय से दूनी तेज होती है।

३. द्रुत लय—द्रुत लय उसे कहते हैं जो बहुत तेज होती है। यह मध्य लय से दुगनी तेज होती है। यह बहुत अभ्यास के बाद आती है। एक के बाद दूसरो ताली जल्दी-जल्दी लगाने से द्रुत लय होती है।

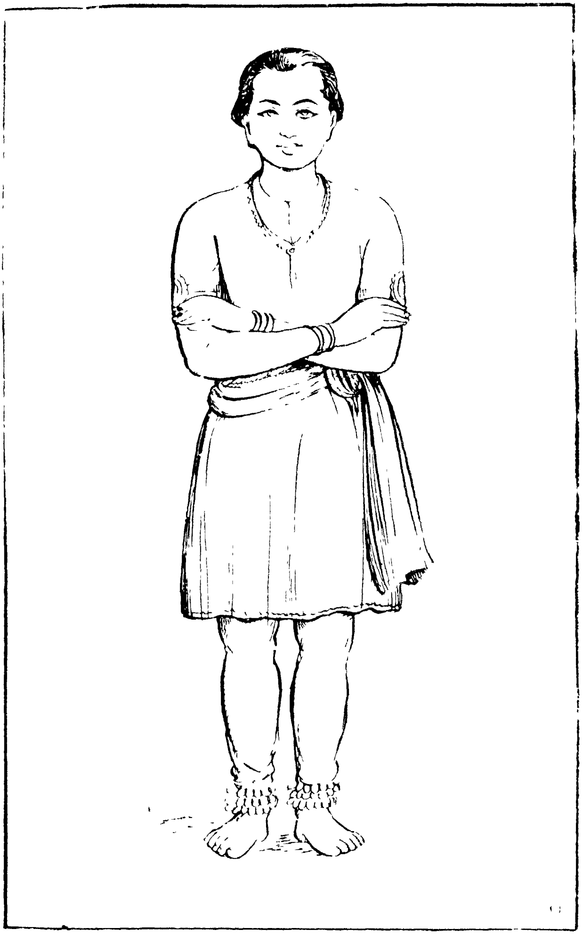
मात्रा

संगीत में समय नापने के पैमाने अथवा इकाई को मात्रा कहते हैं। गाने-बजाने तथा नाचने में समय को नापने के लिए मात्रा होती है। जिस प्रकार दूध को सेर, आधा सेर बाँटों द्वारा नापते हैं, कपड़े की नाप गज द्वारा होती है, उसी भाँति लय मात्राओं द्वारा नापी जाती है। जब हम लय में हाथसे ताली देते है तो एक ताली के बाद दूसरी के बीच के समय को मात्रा कहते हैं।

ताल

संगीत में जो समय व्यतीत होता है उसके नापने वाली क्रिया को ताल कहते हैं। ताल के सर्वव्यापक होते हुये भी उसके नाम भिन्न-भिन्न हैं। विश्व के जो सभी कार्य ताल-बद्ध होते हैं, वही ठीक माने जाते हैं। किसी भी संगीतज्ञ अथवा नृत्यकार की सत्यता जाँचने के लिए ताल एक मोटा साधन है जिसे साधारण व्यक्ति भी समझ लेता है। बोलों की आपस में एक्यता तथा भिन्नता दिखाने के लिए भी ताल एक मात्र सहारा

चित्र नं० १



कत्थक मे ततकार अङ्ग

है। गायन-वादन तथा नृत्य इन सब में ताल प्राण के समान है। जिस प्रकार गीत-वादन और नृत्य संगीत के अन्तर्गत हैं उसी प्रकार—"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम् ।" ताल मंजरी के अनुसार ता शब्द शंकरजी और ल शब्द पार्वती द्वारा निर्माण होकर ही ताल की उत्पत्ति हुई है।

ताल के दस प्राण माने गये हैं :—

कालो, मार्गः, क्रियां, गानि, ग्रहो, जाति, कला, लयः ।
यति प्रस्तार कश्येति ताल प्राण दस स्मृताः ॥

१. **काल**—समय को काल कहते है। किसी भी ताल में खण्ड के अनुसार जो समय निश्चित होता है उसे काल कहते हैं।

२. **मार्ग**—ताल देने के रास्ते को मार्ग कहते हैं।

३. **क्रिया**—किसी कार्य के करने की विधि को क्रिया कहते हैं।

४. **अंग**—ताल के शास्त्रीय रूप को ही अंग कहते हैं। अंग आठ प्रकार के होते हैं :—

१. लघु—लघु के अन्दर चार मात्रायें होती हैं।
२. गुरु—इसमें आठ मात्रायें होती हैं।
३. द्रुत—द्रुत में दो मात्रायें होती हैं।
४. अनुद्रुत—इसमें एक मात्रा होती है।
५. दविराम—इसमें तीन मात्रायें होती हैं।

६. प्लुत––प्लुत में बारह मात्रायें होती हैं।

७. लविराम––इसमें पाँच मात्रायें होती हैं।

८. काकपद––इसमें सोलह मात्रायें होती हैं।

इन्हीं अंगों द्वारा ताल की रचना होती है।

५. ग्रह—प्राचीन काल में ताल के आवर्त में किसी गति के प्रारम्भ के स्थान को ग्रह कहते हैं। ग्रह के मुख्य दो भेद होते हैं :—

१. सम––सम तब होता है जब गीत, नृत्य या वादन में ताल प्रारम्भ हो तथा वह ताल की पहली मात्रा होती है।

२. विषम––विषम तब होता है जब गीत ताल के साथ आरम्भ न हो। विषम के दो भेद होते हैं।

अतीत–जब गीत या नृत्य का प्रारम्भ ताल के पूर्व हो।

अनाघात–जब नृत्य का प्रारम्भ ताल के बाद हो।

६. जाति—विभागों की मात्राओं की संख्या के बदलने से तालों का वजन बदल जाता है। जातियाँ पाँच होती हैं :—

१. तिस्त्रजाति–जिस ताल के प्रथम विभाग में तीन मात्रा हों उसे तिस्त्र जाति कहते हैं।

२. चतस्त्रजाति–जिस ताल के प्रथम विभाग में चार मात्रा हों उसे चतस्त्र जाति कहते हैं।

३. खंडजाति–जिस ताल के प्रथम विभाग में पाँच मात्रा हों उसे खण्ड जाति कहते हैं।

४. मिश्र जाति–जिस ताल के प्रथम विभाग में सात मात्रा हों उसे मिश्र जाति कहते हैं।

५. संकीर्ण—जिस ताल के प्रथम विभाग में नौ मात्रा हों उसे संकीर्ण जाति कहते हैं।

७. कला—बजाने की तथा नृत्य करने की विधि और शैली को ही कला कहते हैं।

८. लय—इसका वर्णन हम इस भाग के प्रारंभ में कर चुके हैं।

६. यति--लय दिखाने की विधि को यति कहते हैं।

१०. प्रस्तार—किसी बोल को फैलाने को प्रस्तार कहते हैं।

आवृत्ति—किसी भी ठेके को सम से लेकर सम तक एक बार पूरा बजाने को आवृति कहते हैं अर्थात् किसी भी ठेके को एक मात्रा से प्रारंभ करके निश्चित मात्रायें बजा कर पुनः फिर उसी मात्रा पर आते हैं तो उसे ठेके की आवृत्ति कहते हैं।

विभाग—सम्पूर्ण ताल को जिन छोटे-छोटे हिस्सों में बांटा जाता है उन्हें उस ताल का विभाग कहते हैं। तालों की रचना विभागों के आधार पर ही की जाती है। प्रत्येक ताल में जितनी ताली खाली या भरी होती हैं उनकी संख्या को जोड़

देने से विभागों का पता लग सकता है जैसे तीन ताल में ४ विभाग हैं। इसमें तीन ताली और एक खाली होती है। इस प्रकार तीन ताल में चार विभाग अथवा खण्ड हुये।

सम—कोई भी ठेका जहाँ से आरम्भ होता है, उसकी पहली मात्रा को सम कहते हैं। ठेके में एक निश्चित जगह ऐसी होती है जहाँ पर कि लय बिना रुके हुये भी विश्राम कर लेती है और सभी संगीतकार सागर में बहते हुए भी उस जगह को छूते रहते हैं उसे ही सम कहते हैं।

ताली—ताल विभागों की उन प्रारंभिक मात्राओं को ताली कहते है जिन पर हाथ से ताली दी जाती है और तबले पर जोर दिया जाता है। संगीतकार को इन तालियों द्वारा ही ताल मार्ग दिखाई देता है।

खाली—ठेके में किसी जगह ताली देने के बजाय हाथ से अलग इशारा कर दिया जाता है उसे ही खाली कहते हैं।

आमद—आमद शब्द का अर्थ है 'आना' अर्थात् सभा में प्रवेश करना। नर्त्तक के रंग भूमि में लय के साथ कोई टुकड़ा लेकर प्रवेश करने को मुसलमानी भाषा में आमद कहते हैं।

सलामी—नर्त्तक जब सभा में प्रवेश करे तो उसे चाहिए कि वह सभा को प्रणाम करे। अतः कोई तोड़ा नाच कर सम पर प्रणाम करना ही सलामी का भाव है। परन्तु यदि शिव

तथा कृष्ण अथवा अन्य किसी देवी देवता के रूप में आवे तो प्रणाम नहीं करना चाहिये ।

तोड़ा—नृत्य के बोलों को ही तोड़ा कहते हैं ।

गत—ताल बद्ध एक ऐसी रचना जिसको गति द्रुत होती है, उसे गत कहते हैं । यह बहुत अभ्यास के बाद आती है ।

ठाट—'ठाट' शब्द का अर्थ है प्रथम करण होना अर्थात् शरीर की प्रथम बनावट को ही ठाट कहते हैं ।

पल्टा—नृत्य के बोलों के उतराव चढ़ाव को ही पल्टा कहते हैं तथा बोलों को विभिन्न प्रकार से पलटने को भी पल्टा कहते हैं ।

परन—वह बोल जो विभिन्न प्रकार की लय को व्यक्त करता हुआ किसी भी मात्रा से उठ कर सम पर आये उसे परन कहते हैं । परणों की समाप्ति तिया लेकर होती है । इनमें लय से लड़ते हुये चलते हैं । यह एक आवृति से अधिक की होती है ।

चक्करदार परन—वह परन जिसमें बिना दम लिये चक्कर लिये जाँय और वह एक आवृति से अधिक की हो वह चक्करदार परन कहलाती है ।

कवित्त—कोई भी पद अथवा कविता को लय और ताल में बांध कर उसके प्रत्येक शब्द का उसी प्रकार भाव दिखाते हुये प्रदर्शित करना ही कवित्त है ।

तिया—एक आवृत्ति के बीच में किसी भी मात्रा से तीन बार में बराबर लेकर जो सम पर आवे वह तिया कहलाता है।

तिहाई—जो परन तीन बार में लेकर सम पर आवें उसे तिहाई कहते हैं।

टुकड़ा—४ या ६ मात्रा का कोई भी बोल लेकर जब हम सम पर आते हैं तो वह टुकड़ा कहलाता है।

पढ़ंत—पढ़ंत का बहुत महत्व है। बोल अथवा परन को लय के साथ खाली भरी दिखाते हुये जो शुद्ध उच्चारण किया जाता है उसे पढ़ंत कहते हैं।

निकास—जब नर्त्तक कोई भाव लेता है तो उस भाव की मुद्रा जिस प्रकार बनती है वह निकास कहलाता है।

चिह्न परिचय

तालों में 'ताली' अथवा 'खाली' प्रत्येक विभाग की पहिली मात्रा से गिनना होगी।

× यह चिह्न ताल का आरम्भ बतलाता है, जिसे 'सम' कहते हैं।

२, ३, ४. यह अंक ताल की 'तालियों' के लिये होंगे अर्थात् अंक २ का अर्थ दूसरी ताली से है।

० यह चिह्न ताल की खाली बतलाता है। जहाँ पर 'ताली' नहीं बजेगी, किन्तु उस विभाग की मात्राएँ ही गिनना होंगी, जिसे ताल की खाली कहते हैं।

ऽ यह चिह्न दीर्घता दर्शक है अर्थात् जिस बोल के आगे यह दिया हो वह 'बोल' उतनी ही मात्रा तक बढ़ाना होगा। जैसे ता ऽ, इसमें 'ता' शब्द दो मात्रा का होगा।

‿ यह चिह्न उस समय लगा होगा जब कि एक मात्रा के काल में एक से अधिक शब्द होंगे अर्थात् इस चिह्न में लिखे हुए सब 'बोल' अथवा शब्द एक मात्रा के समय में कहना चाहिए।

। यह चिह्न ताल के विभाग का है जो कि ताल की विभाजित मात्राओं के विभाग बतलाता है।

ऽ गुरु बतलाने के लिए प्रयोग होगा।

। लघु बतलाने के लिए प्रयोग होगा।

दां दांया पैर के लिए।

बां बांया पैर के लिए।

अब यहाँ उन हस्त संचालनों तथा पद संचालनों का वर्णन करेंगे जो कत्थक नृत्य में अधिकतर प्रयुक्त होते हैं। उनको

चित्रों द्वारा भी व्यक्त कर दिया गया है, जिससे उनको समझने में पूर्ण सहायता मिल सके।

Fig. १–ततकार करते रहने की स्थिति में। इसमें दोनों पैर मिले हुए तथा जरा पंजों पर से खुले हुए सम अवस्था में रहते हैं। हाथ भी बँधे रहते हैं। दृष्टि सामने रहती है। इसमें इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि ततकार करते समय पैर घुटनों पर से नहीं मुड़े तथा पैर एक स्थान पर पूरा पड़ता रहे। इसको प्रारम्भ में विलंबित लय से अभ्यास करते हुए द्रुत अवस्था तक ले जाना चाहिए।

Fig २. और ३–यह कत्थक नृत्य की थाट अवस्था की मुद्रायें हैं। यह और भी कई प्रकार से बनता है। इसमें बांया पैर सम अवस्था में तथा दांया पैर विकृत अवस्था में रहता है। दृष्टि हाथों के संचालन के साथ चलती है। सर्व प्रथम इसमें भों तथा गर्दन संचालन होना चाहिए। पश्चात् हस्त संचालन तथा बाद में पद संचालन और अङ्ग संचालन होना चाहिए।

Fig. ४–इस हस्त मुद्रा का कत्थक नृत्य में चलन लेते समय प्रयोग होता है। इसमें मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठका तीनों उँगलियाँ मिली हुई रहनी चाहिए तथा तर्जनी उंगली थोड़ा सा झुकी हुई रह कर अंगूठा से मिलती है। इसमें हाथ सीधा रहता है। ।अधिकतर ऐसा देखा जाता है कि करते करते हाथ कोहनी पर से नीचे झुक जाते हैं।

चित्र नं० २



कत्थक में थाट अङ्ग

Fig. ५ और ६–मुकुल अवस्था में उँगलियां Fig नं० ५ में रहती हैं और फिर वह उँगलियां जल्दी से खुल जाती हैं, जैसा Fig. No. ६ में। इनको नृत्यकार कई प्रकार से लेते हैं। कभी एक-एक हाथ की उँगलियां खोलते हैं, कभी दोनों की साथ-साथ तथा कभी ऊपर नीचे।

Fig. ७–इस हस्त मुद्रा का टुकड़े और परन लेते समय प्रयोग होता है। इसको लेते समय कई बातों का ध्यान रखना चाहिए जैसे हाथ पूरा और सीधा फैले। उँगली या अंगूठा अलग बिखरा हुआ न रहे तथा दृष्टि सदैव जिधर को हस्त-संचालन रहे उसके साथ-साथ ही रहे। जिस प्रकार दांई ओर लिया गया है उसी भाँति बांई ओर ली लिया जाता है।

मण्डल

कत्थक नृत्य में जितनी अधिक पैर की तैयारी होती है उतना ही चक्कर लेने का भी अभ्यास करना पड़ता है। यह उलटे और सीधे दोनों तरह लिए जाते हैं तथा इनको लेते हुए कई प्रकार से हस्त संचालन रहते हैं। मैं यहाँ केवल एक प्रकार से ही हस्त संचालन लेते हुए चक्कर लेने की विधि चित्रों द्वारा बता रहा हूँ।

Fig. ८, ९, और १०–इसमें पैर से तिधा दिगदिग थेई
दां बां दां बां दां बां दां
या तत तता थेई निकलेगा। पैर से बोल स्पष्ट
दां बां दां निकलने चाहिएं। दोनों हाथ

कलाई पर से मिलाकर घुमा दिये जायेंगे । चक्कर लेते समय इस बात का ध्यान रहना चाहिए कि चक्कर बिलकुल सामने आवे । उँगलियां तथा अंगूठा मिले रहें तथा सीधे रहें। चक्कर गिरते पड़ते नहीं आने चाहिए नहीं तो बहुत बुरा लगता है। प्रारम्भ में कुछ चक्कर आते हैं किन्तु अभ्यास के पश्चात् ठीक हो जाते हैं। चक्कर सीधे और उलटे दोनों ओर से लेने चाहिए ।

तीन ताल

(अल्प परिचय)

तीन ताल प्राचीन तालों में से है। गुरुजनों ने इसको आदि ताल के नाम से भी बताया है। आजकल इसको त्रिताल भी कहते हैं। इसकी मात्रा १६ और भाग ४ है। इसमें ३ ताली तथा १ खाली है। इसमें ताली १, ५, और १३ पर लगती है तथा खाली ९ पर है। स्वरूप लघु-गुरु और लघु है।

ठेका तीन ताल—मात्रा १६.

ताल चिह्न	×				२			
तबले के बोल	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा
नृत्य के बोल	ता	आ	थे	ई	थे	ई	त	त
पैरों का चलन	दां	ऽ	बां	ऽ	दां	ऽ	बां	ऽ

ताल चिह्न	०				३			
तबले के बोल	धा	ति	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
नृत्य के बोल	आ	आ	थे	ई	थे	ई	त	त
पैरों का चलन	दां	ऽ	बां	ऽ	दां	ऽ	बां	ऽ

दुगुन

तबले के बोल	धा धिं	धिं धा	धा धिं	धिं धा
नृत्य के बोल	ता आ	थे ई	थे ई	त त

तबले के बोल	धांति	तिंता	ता धिं	धिंधा
नृत्य के बोल	आआ	थेई	थेई	तत
तबले के बोल	धा धिं	धिं धा	धा धिं	धिं धा
नृत्य के बोल	ताआ	थेई	थेई	तत
तबले के बोल	धां ति	ति तां	ता धिं	धिं धा
नृत्य के बोल	आआ	थेई	थेई	तत

चौगुन

तबले के बोल	धाधिं धिंधा	धाधिंधिंधा	धातिंतिंता	ताधिं धिंधा
नृत्य के बोल	ता थेई	थेई तत	आ थेई	थेई तत
तबले के बोल	धाधिं धिंधा	धाधिं धिंधा	धातिं तिंता	ता धिं धिंधा
नृत्य के बोल	ता थेई	थेई तत	आ थेई	थेई तत
तबले के बोल	धाधिं धिंधा	धाधिं धिंधा	धातिं तिंता	ताधिं धिं धा
नृत्य के बोल	ता थेई	थेई तत	आ थेई	थेई तत

ततकार के प्रकार

ततकार का कत्थक नृत्य में बहुत ही महत्व-पूर्ण स्थान है। इसी के द्वारा नृत्यक का पैर बनता है। इसका अभ्यास करने में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। जिस प्रकार संगीत में अलङ्कारों का स्थान है उसी प्रकार नृत्य में ततकार अपना स्थान

रखती है। भिन्न-भिन्न घराने की भिन्न-भिन्न ततकारें बनी हुई हैं और बनती रहेंगी। न इसका कोई अन्त है, और न हो सकता है। इससे भिन्न-भिन्न प्रकार की लयकारियों पर भी अभ्यास हो जाता है।

प्रकार—१

	×					२			
नृत्य के बोल	ता	थेई	थेई	तत	ऽ	आ	थेई थेई	तत	ऽ
पैर का चलन	दां	बां	दां	बां	ऽ	बां	दां बां	दां	ऽ

	०					३			
नृत्य के बोल	ता	थेई	थेई	तत	ऽ	आ	थेई थेई	तत	ऽ
पैर का चलन	दां	बां	दां	बां	ऽ	बां	दां बां	दां	ऽ

प्रकार—२

	×					२			
नृत्य के बोल	ता	थेई	ऽ	थेई	तत	आ	थेई	ऽ	थेई तत
पैर का चलन	दां	बां	ऽ	दां	बां	बां	दां	ऽ	बां दां

	०					३			
नृत्य के बोल	ता	थेई	ऽ	थेई	तत	आ	थेई	ऽ	थेई तत
पैर का चलन	दां	बां	ऽ	दां	बां	बां	दां	ऽ	बां दां

प्रकार—३

नृत्य के बोल	ता ऽ थेई थेई तत	आ ऽ थेईथेई तत
पैर का चलन	दां ऽ बां दां बां	बां ऽ दां बां बां
नृत्य के बोल	ता ऽ थेईथेई तत	आ ऽ थेई थेई तत
पैर का चलन	दां ऽ बां दां बां	बां ऽ दां बां बां

प्रकार—४

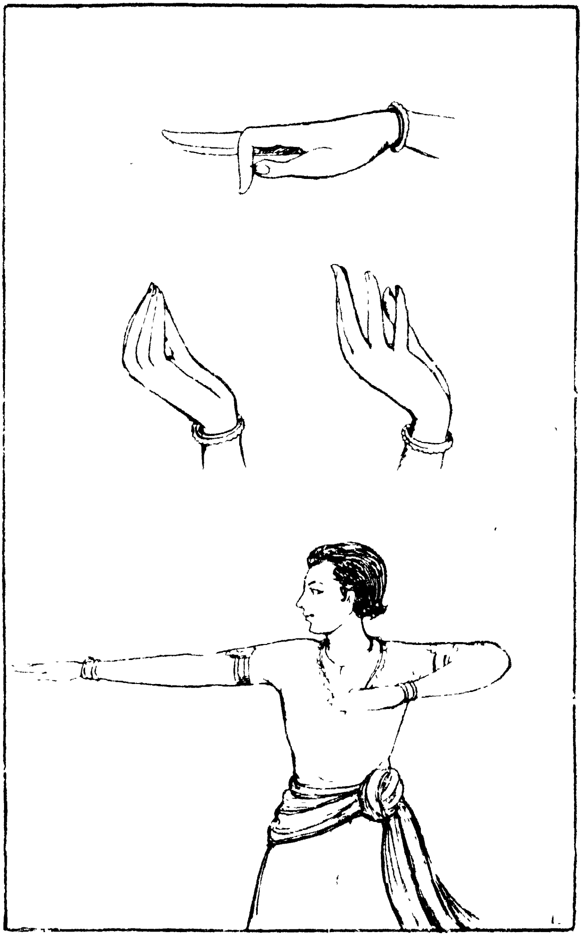
नृत्य के बोल	ता ऽ तत थेई तत	ताता ताता थेई तत
पैर का चलन	दां दां बां दां बां	दां बां दां बां दाबां दांबां
नृत्य के बोल	ता ऽ तत थेई तत	ताता ताता थेई तत
पैर का चलन	दां दां बां दां बां	दां बां दां बां दांबां दांबां

प्रकार—५

नृत्य के बोल	ता थेई थेई त्रक	आ थेई थेई त्रक
पैर का चलन	दां बां दां बां दां	बां दां बां दां बां
नृत्य के बोल	ता थेई थेई त्रक	आ थेई थेई त्रक
पैर का चलन	दां बां दां बां दां	बां दां बां दां बां

कत्थक नृत्य में सर्व प्रथम नृत्यकार नृत्य करने के लिए आकर खड़ा हो तो उस समय उसकी दृष्टि सम रहनी चाहिए। इसके पश्चात् आमद या सलामी लेकर थाट बनाया जाता है। इसमें भौं और गर्दन का क्रमशः संचालन करने के पश्चात् हाथों का संचालन किया जाता है।

चित्र नं० ४, ५, ६, ७



कत्थक में प्रयोग होने वाली मुद्रायें

स्वतन्त्रता के पश्चात् फिर से अब आमद और सलामी का स्थान गणेश स्तुति और गणेश परण लेती जा रही है ।

इसके पश्चात् बोल और टुकड़ों की वारी आती है । कत्थक नृत्य में बोलों का जिस प्रकार विभाजन किया जाता है वह निम्न प्रकार है:—

ततकार के टुकड़े—जो बोल ता–थेई–तत के आधार पर बने हैं ।

संगीत के टुकड़े—जैसा नाम से व्यक्त है, इसके अन्दर बहुत ही कोमल शब्दों वाले बोल आते हैं तथा उनको कम-नीयता के साथ प्रस्तुत किया जाता है ।

सादा टुकड़े—तबले के बोल जो नृत्य में प्रस्तुत हों वह सादा टुकड़े कहलाते हैं ।

प्रिमूल—जिसमें तवला, पखावज तथा नृत्य के बोल मिले हुए हों वह प्रिमूल कहलाती है ।

परण—पखावज़ के बोल इसमें लिए जाते हैं ।

इसके उपरान्त हर बोल की भिन्न-भिन्न जाति भी होती है जिनका वर्णन पीछे कर दिया गया है ।

आमद के बोल खाली से

१. गदि गिन थेई गदि | गिन थेई गदि गिन । ता
दांबां दांबां दां दांबां | दांबां दां दांबां दांबां ×

सलामी के बोल खाली से

२. तत तत ता थेई थेईतत | ता थेई थेई तत तत तत । ता
दां बां दांबां दां बां | बां दां बां दां दां बां ×

टुकड़ा १३ मात्रा से

३. तत तत तिगदा दिगदिग ता
दां बां दांबां दांबांदांबां ×

टुकड़ा ११ मात्रा से

४. ता थेई तत थेई तिगदा दिगदिग । ता
दां बां दांबां दां दांबां दांबांदांबां ×

टुकड़ा ९ मात्रा से

५. तत तत थुन थुन । | धीकिट धीकिट ताथेई ता थेई
दां बां दां बां | दांबांदा दांबांदां दांबां दांबां

चित्र नं० ८, ९, १०



कत्थक में चक्कर लेने की विधि

टुकड़ा ६ मात्रा से

६. ता थेई तत थेई ता थेई तत थेई

दांबां दांबां दांबां दांबां

थेईत थेईत थेई थेई तत् तत ता

दांबां दांत्रां दांबां दांबां ×

सम से

७. तत तत थुन थुन

दां बां दां बां

तिग धा दिगदिग थेई ऽ | तत तत थुन थुन

दां बां दांबांदांबां दां ऽ | दां बां दां बां

तिगधा दिगदिग थेई ऽ | तत तत थुन थुन

दांबां दांबांदांबां दां ऽ | दां बां दां बां

२				०			
तिगधा	दिग दिग	थेई	ऽ	तिगधा	दिगदिग	थेई	ऽ
दांबां	दांबांदांबां	दां	ऽ	दांबां	दांबांदांबां	दां	ऽ
१३							
तिगधा	दिगदिग	थेई	ऽ	ता			
दां बां	दांबांदांबां	दां	ऽ	×			

८.

ता	थेई	ततत	थेई	तिगधा	दिगदिग	थेई	ऽ
दां	बां	दांबां	दां	दांबां	दांबांदांबां	दां	ऽ
ता	थेई	ततत	थेई	तिगधा	दिगदिग	थेई	ऽ
दां	बां	दांबां	दां	दांबां	दांबांदांबां	दां	ऽ
ता	थेई	ततत	थेई	तिगधा	दिगदिग	थेई	ऽ
दां	बां	दां बां	दां	दांबां	दांबांदांबां	दां	ऽ
तिगधा	दिगदिग	थेई	तिगधा	दिगदिग	थेई	तिगधा	दिगदिग
दांबां	दांबांदांबां	दां	दांबां	दांबांदांबां	दां	दांबां	दांबांदांबां

ता
×

कवची अङ्ग का टुकड़ा

९.	ता	थेई	ततत	थेई	ता थेई थेई तत आ थेई थेई तत
	दां	बां	दांबां	दां	दां॰ दांबां
	तत	तत	थेई	तत	तत थेई तत तत ता
	दां	बां	दां	दां	धां दां दां बां ×
१०.	ता	थेई	ततत	थेई	तिगधा दिगदिग क्डान थेई
	दां	बां	दांबां	दां	दांबां दांबांदांबां दांबां दां
					(उछलना)
	ता	थेई	ततत	थेई	तिगधा दिगदिग क्डान थेई
	द	बां	दांबां	दां	दांबां दांबांदांबां दांबां दां
					उछलना)
	ता	थेई	ततत	थेई	तिगधा दिगदिग क्डान थेई
	दां	बां	दांबां	दां	दांबां दांबांदांबां दांबां दां
					(उछलना)

तिगधा दिगदिग थेई तिगधा | दिगदिग थेई तिगधा दिगदिग

दांबां दांबांदांबां दां दांबां | दांबांदांबां दां दांबां दांबांदांबां

ता
×
११ एक दोऽती ऽनचॉर पाँच | छै ऽ एक दो ऽ ती

दां बां दां बां दां | दां ऽ दां बां

ऽ न चा र पाँच छै ऽ | एक दो ऽती ऽनचा र पाँच

दां बां दां दां ऽ | दां बां दां बां दां

ता
×
१२ एक दो ऽती ऽन चा रापाँच | छै कड़ान धा कत

धा कड़ांन धा कत | धा कड़ान धा कत

ता
×
१३ एक दोऽती ऽ नचा रपाँच | छै कड़ान धा कत

धा ऽ कत कत | ऽ कड़ांन धा कत

धा ऽ कत कत | ऽ कड़ान धा कत

	धा	क्ड़ांन	धा	कत	|	धा	क्ड़ान	धा	कत
	ता								
	×								
१४	तत	तत	ता	द्रग	|	दन	दन	भिभि	कत
	थो	थड़	ऽग	तक	|	थुन	थुन	तिगदा	दिगदिग
	थेई	ऽ	तत	तत	|	ता	द्रग	दन	दन
	भिभि	कत	थो	थड़	|	ऽग	तक	थुन	थुन
	तिगदा	दिगदिग	थेई	ऽ	|	तत	तत	ता	द्रग
	दुन	दुन	भिभि	कत	|	थो	थड़	ऽग	तक
	थुन	थुन	तिगदा	दिगदिग	|	थेई	तक	थुन	थुन
	तिगदा	दिगदिग	थेई	तक	|	थुन	थुन	तिगदा	दिगदिग
	ता								
	×								
१५	भिग	भिग	तरं	ऽग	|	ता	तो	तरं	ऽग
	तक	थुन	थुन	तक	|	थुन	थुन	तिगदा	दिगदिग
	थेई	ऽ	भिग	भिग	|	तरं	ऽग	ता	तो

तरं ऽग तक थुन | थुन तक थुन थुन

तिगदा दिगदिग थेई ऽ | झिग झिग तरं ऽग

ता तो तरं ऽग | तक थुन थुन तक

थुन थुन तिगदा दिगदिग | थेई तक थुन थुन

तिगदा दिगदिग थेई तक | थुन थुन तिगदा दिगदिग

ता
×

१६ ताथेई थेई तत आथेई थेई तत | ताथेई थेई तत आथेई थेई तत

तत ते ऽता थेई तिगदे | ऽता थेई तिगधा दिगदिग

थेई ऽ तत तत | तिगधा दिगदिग थेई तत

तत तिगधा दिगदिग थेई | तत तत तिगधा दिगदिग

ता
×

आड़ का बोल

१७. तिग धाति गधा थेई । तिग धाति गधा थेई

ता थेई थेइ तत आ थेई थेई तत । तिधा दिग दिग थेई तिधा

दिग दिग थेई तिधा दिगदिग । थेई ऽ तिग धाति

गधा थेई तिग धाति । गधा थई ताथई थई तत

आ थेई थेई तत तिधा दिगदिग । थेई तिधा दिगदिग थेई

तिधा दिगदिग थेई ऽ । तिग धाति गधा थेई

तिग धाति गधा थेई । ता थेई थेई तत आ थेई थेई तत

तिधा दिगदिग थेई तिधा । दिगदिग थेई तिधा दिगदिग

ता
×

१८. तत तत थेई ऽ । तिगधा तत थेई ऽ

तत तत तिगधा तत । तिग धाऽथै ईतिग धऽ । ता
×

१९. धात कथुं गाऽ धागे । दिग ताऽ धादिं ताऽ

धित्ता क्डिना तक्का थुगां । तकिट तका

तिटकत गदिगिन । ता

×

चक्करदार तिहाई

६० ता थुंगा तक्क थुंगा | क्रधे ऽता थुंगा तक

दिगदिग दिगदिग दिगदिग थेई | ततत थेईतत ततथेई ततत

थेई ततत थेईतत ततथेई | ततत थेई ततत थेईतत

ततथेई तत तत थेई ता | थुंगा तक्के थुंगा क्रधे

ऽता थुंगा तक्के दिगदिग दिगदिग दिगदिग थेई ततत

थेईतत ततथेई ततत थेई ततत थेईतत ततथेई ततत

थेई ततत थेईतत ततथेई ततत थेई ता थुंगा

तक्के थुंगा क्रधे ऽता | थुंगा तक दिगदिग दिगदिग

दिगदिग थेई ततत्त थेईतत | ततथेई ततत तथेई ततत्त

थेईतत ततथेई ततत्त थेई | ततत्त थेईतत ततथेई

ततत्त | ता
×

२१ किटतक थुन थुन नाति टता | अद्धा दिन्ता क्धा दिन्ता

तकिट धादिन ऽता कत | तिट धा दिन ऽता क्धेत

धादि नता तकि टधा | थुऽ न्त धा ताकिट

धा थुऽ न्त धा | ताकिट धा थुऽ न्त | धा
×

आड़ की चक्करदार तिहाई

२२. आंग आंग तकिट तकिट ।

तकिट थुङ्ग दिगदिगदिग थेई ।

ता थेई ततथेई ता थई ततथई ।

ततत थुंथुंथुं ननन दिगदिगदिग ।

थई ततत थुंथुंथुं ननन ।

दिगदिगदिग थेई ततत थुंथुंथुं ।

न न न	दिगदिगदिग	थेई	त्रांग
त्रांग	त किट	त किट	त किट
थुंग	दिगदिगदिग	थेई	ता थेई
तत थेई	ता थेई	तत थेई	त त त
थुंथुंथुं	न न न	दिगदिगदिग	थेई
त त त	थुंथुंथुं	न न न	दिगदिगदिग
थेई	त त त	थुंथुंथुं	न न न
दिगदिगदिग	थेई	त्रांग	त्रांग
त किट	त किट	त किट	थुंग।
दिगदिगदिग	थेई	ता थेई	तत थेई
ता थेई	तत थेई	त त त	थुंथुंथुं
न न न	दिगदिगदिग	थेई	ततत
थुंथुंथुं	न न न	दिगदिगदिग	थेई
त त त	थुंथुंथुं	न न न	दिगदिगदिग | ता ✕

२३ तिका तिका तुक थोंग | थोंग तत तत तिका

गदि	गिन	थेई	तिका	तिका	तुक	थोंग	थोंग
तत	तत	तिका	गदि	गिन	थेई	तिका	तिका
तुक	थोंग	थोंग	तत	तत	तिका	गदि	गिन
थेई	तत	तत	तिका	गदि	गिन	थेई	तत
तत	तिका	गदि	गिन	थेई	थेई	कत	कत
थेई	थेई	कत	कत	दिग	दिग	दिग	दिग
दिग	दिग	दिग	दिग	थो	थवां	ऽग	तक
थुन	थुन	धोधी	कत	गदि	गिन	गदि	गिन
धा	गदि	गिन	गदि	गिन	धा	गदि	गिन
गदि	गिन	गदि	गिन	गदि	गिन	धा	गदि
गिन	गदि	गिन	धा	गदि	गिन	गदि	गिन

ता
×

कवित्त—प्रकृति वर्णन

प्रात समय घर से निकसी । आलि पहन के चीर कुसुम की सारी ॥
खेलत कूदत जाय रही । सखि जाय रही नंदलाल की वारी ॥
काज कली एक तोड़ लई । वह कारन बाँह मरोड़त माली ॥
छोड़ के बाँह दूर खड़ी । तत तता थेई तत तता थेई तत तता ॥

कवित्त—शंकर भगवान्

शिव शङ्कर कैलाश पति शरणागतिऽपारवती पति शिव ।
हर पारवती पति शिव हर हर पारवती परि शिव हर हर हर ॥

कवित्त—कृष्ण भगवान्

काल की बात कहूँ का सखि । हो वृन्दावन जात हती ॥
सिर धर मटकी माखन की । बइयाँ आन झकोरत मोहन ॥
सब सखियाँ मुसकात हती । तत छिन लपक झपक कर ॥
टूक टूक फोड़ी मटकी । कर मोर मुकट की छइयाँ छइयाँ छइयाँ ॥

चाचर की लय की परण

दिगन तत तत दिगन ता थेई । दिगदिग ताथेई तक थुरं

नाना नाना नाना नाना । दिगन दिगन दिगन दिगन

ताथेई दिगदिग ता दिगन । दिगन दिगन दिगन ताथेई

दिगदिग ता दिगन दिगन । दिगन दिगन ताथेई दिगदिग

ता
×

झपताल—मात्रा १०

यह ताल खण्ड जाति की है। इसकी मात्रा दस ताली तीन खाली एक है और ताल का स्वरूप ० ० ० ō है प्राचीन काल में इसे झंपताल भी कहते थे।

ठेका

ताल चिह्न	×	२	०	३
ठेका तबला	धी ना	धी धी ना	ती ना	धी धी ना
बोल नाँच	ता थेई	ता थेई तत	आ थेई	आ थेई तत
पैर का चलन	दां बां	दां बां दां	बां दां	बां दां बां

दुगुन

ठेका तबला	धीना धी धी	नती नधी धीन
बोल नाँच	ता थेई ता थेई	तत आ थेई ता थेई तत
ठेका तबला	धीना धीधी	नती नधी धीन
बोल नाँच	ता थेई ता थेई	तत आ थेई ता थेई तत

चौगुन

ठेका तबला	धीना धीधी न ती न धी	धीन धीन
बोल नाँच	ता थेई ता थेई तत आ थेई ता	थेई तत ता थेई

धी धीन ती नधीधीन | धीन धीधी
ता थेई तत आ थेई ता थेई तत | ता थेई ता थेई

न ती न धी | धीन धीन धीधीन ती
तत आ थेई ता | थेई तत ता थेई ता थेई तत आ

नधी धीन |
थेई ता थेई तत |

आमद नं० १

तत तत | ता थेई थेई तत आ थेई | थेई तत
तत तता | थेई तत तता थेई तत तता | ता
×

आमद नं० २

तिगधा दिगदिग | थेई ता तिगधा | दिगदिग
थेई | ता तिगधा दिगदिग | ता
×

तोड़ा नं० ३

ता थेई | ता थेई तत | ताथेई ता थेई
तत थेईता तत | ता थेई ता थेई
तत थेई ता तत | ता धा
तत थेई ता तत | ता
×

परण नं० ४

त्रांग कत | थेई कत धातिट | धातिट थुन
थुन तिर किट | तिगधा दिगदिग | थेई ऽ त्रांग
कत थेई | कत धातिट धातिट | थुन थुन
तिर किट तिगधा | दिगदिग थेई | ऽ त्रांग कत
थेई कत | धातिट धातिट थुन
थुन तिर | किट तिगधा दिगदिग | ता
×

नं० ५

तक तक तक तक | तक तक थेई तिगधा

दिगदिग थेई | ऽ दिगदिग तत तत | दिगदिग

तत तत | तक थेई तक थेई तकथेई | त्रांग

कत | थेई कत तिगधा | दिगदिग

थेई | ता ऽ त्रांग | कत

थेई | कत तिगधा दिगदिग | थेई

ना | ऽ त्रांग कत | थेई

कत | तिगधा दिगदिग थेई | ता
×

कवित्त

६. तड़ित तड़तड़ | धातट धागेद्दिन दिन्त

दिन्नदिन धा | तिधा गह रात | विज्ज घटान।

घे घनन घात | घे घनन | घात घे घनन

एकताल मात्रा १२

इस ठेके में मात्रा बारह भाग छै ताल ४ काल २ है इसका संकेत स्वरूप ।। ० ० है :—

ठेका एकताल

ताल चिह्न	×		०		२		०	
ठेका तबला	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	न	क	त्ता
बोल नाच	ता	थेई	तत	थेई	थेई	तत	आ	थेई
पैर का चलन	दां	बां	दां	बां	दां	बां	दां	बां

ताल चिह्न	३	×	४	
ठेका तबला	धागे	तिरकिट	धी	ना
बोल नाच	तत	थेई	थेई	तत
पैर का चलन	दां	बां	दां	बां

दुगुन

धि धि धागे तिरकिट | तूना कत्ता

धागे तिरकिट धिना | धि धि धागे तिरकिट

तूना कत्ता | धागे तिरकिट धिना

चौगुन

धिं धिं धागे तिरकिट तूना कत्ता धागे तिरकिट धिना

धिं धिं धागे तिरकिट तूना कत्ता धागे तिरकिट धिना

धिं धिं धागे तिरकिट तूना कत्ता धागे तिरकिट धिना

धिं धिं धागे तिरकिट तूना कत्ता धागे तिरकिट धिना

तत्कार प्रकार

१. थेई तत । आ थेई । थेई थेई ।

आ तत । ता थेई । तत ।

२. ता थेई । आ थेई । ता ऽ

थुं थेई । ता थेई । तत थेई

टुकड़ा नं० १

तत तत | थुन थुन | तिगधा दिगतिग थेई ता | ऽ तिगधा

दिगदिग थेई | ता ऽ | तत तत | थुन थुन | तिगधा दिगदिग

थेई ता | ऽ तिगधा | दिगदिग थेई | ता ऽ
तत तत | थुन थुन | तिगधा दिगदिग | थेई ता
ऽ तिगधा | दिग दिग थेई | ता तिगधा
दिगदिग थेई | ता तिगधा दिगदिग थेई | ता
×

नं० २

नगन्न धेत धेत | तड्न्न धा धा
किड़ धेत धेत धेत | धागेनिध किटधिकिट
धगन कऽत | धगन कऽत
धिटधिट तिटतिट | धगन धी किटकत
दिगन्नाड् कऽत | तड्न्न धा
ताधा तिरकिट | धगनत गनकत
ता
×

नं० ३

ता थेई । ताता थेई । ता थेई । ताता थेई ।

तत तत । ता ऽ । कत्त गदि । ग न थेई ।

तत तिट । घेघे तिट । गदि गन । नागे तिट ।

तत घेघे । तिट तत । गदि गन । नागे तिट ।

कत्त घेघे । तिट कत्त । थेई घेघे । तिट कत्त ।

थेई घेघे । तिट कत्त थेई घेघे । तिट कत्त ता ।

×

नृत्य की कुछ तथकारें

दादरा मात्रा ६

	×			|	०		
ठेका तबला	धा	धिं	ना	|	धा	तिं	ना
नृत्य के बोल	ता	थे	ई		थे	ई	ता

तेवरा मात्रा ७

	×			|	२		|	३	
ठेका तबला	धा	दिं	ता	|	तिट	कत	|	गद	गिन
नृत्य के बोल	ता	थेई	तत		तत	आ		थेई	तत

आड़ा चौताल—मात्रा—१४

ठेका तबला	धिं	तिरकिट	धी	ना	तू	ना	क	त्ता
नृत्य के बोल	ता	थेई	तत	थेई	तत	थेई	तत	आ

ठेका तबला	तिरकिट	धी	ना	धी	धी	न
नृत्य के बोल	थेई	तत	थेई	तत	थेई	तत

अप्रचलित तालों के ठेके

ग्रहताल -मात्रा—९

×		२	३		
धा	दिंदिं	ता	तिटकत	गदगिन	तकाथुं

	४	
गाधा	तिटकत	गदगिन

मणिताल—मात्रा—११

×		२	३		४	
धा	ति ट	कि ट	ध	कि ट	त	कि ट

मत्त विजय ताल—मात्रा—१३

×			२	०		३
धा	धिन	धेत	धि न	नक	ता	धा

४ ०
कत धा तिट कत गद् गिन

सवारी–मात्रा–१५

× २
ध म कि ट ध दि ग न ध दि

३
ग न धि न न

गज झम्पा ताल–मात्रा–१५

× २ ३
धा धिन नक तक धा धिन नक तक धिन

नक किट तक धिन गदि गन

अष्ट मंगल ताल–मात्रा–२२

× २ ३ ४
धा ऽधु म कि ट त क धु म कि ट

५ ६ ७ ८
धु म ति ट क त ग द गि न

पञ्चदेव स्तुति-परण लय आड़ी

तक धागेतिट धागेन धागेदिन दिंत दिंदन
धात धा धिट ध्धिटा धी धी तिटि धात्रक
धटगन कत्त कत्तटी कटिटिता कृता
कतिटि किटि कत कतिटि किटतक
कितिटि किटतक कतीटोता कतकत्त
द्रगनन थुंन्तधा धिन धिनक धा
धिन धिनक धागेत्रक थुंग धागेत्रक थुंग धा
धिट पञ्च गणपति पञ्च पाणव नटनारायण
नटनरेहर पुष्प चंदन मुकुट झकझक
धनित धगनग धनितधा किटतक
तंत्र मन्तर जपति गणपति फड़ित धड़कड़
फणित धा गति नादं अपरम्पार गतिनति
देख नित नित्र ध्ध धड़ाधड़ धड़क
जम धड़जगन धड़धड़ तंग तड़धड़
नगनतगतिटि धगनधगकिटि धा
दुर्ग दुर्गति नाशनी दल असुर दलदलदल
मलित दल सुभं सुभंन काट मार
पछार ड़ारत तनक मे रहे भुवन त्रभुवन
जयत जय जय जयत जय जय सुर
सकल निर्भय जान गावत ताल दै दें दै
मृदङ्गन तंग्रक झिगन दिड़त नगदिन
दिड़त नगदिन दिन्त धा

शिव परण-लय आणी

बिटतिट तिट तगिन तगिन धित ड़ान
धिन्न ड़ान दिग्ग दान धुमकिटतक धिकट
तगिन धिकिट तगिन छत्र पती जगत पती
देव पती महा देव तगड़तक तिरकिटतक
धिरकिटतक गले मुंड माल शोभित है
चन्द्र भाल धाकिटतक धुमकिटतक ड़िमक
ड़िमक डमरू बजत बिघ्न हरत दारिद
दुख दूर करत तिरकिटतक तानंनां
धिटक तान तगन गधग दिन्त कत्त
नगन ड़ान गदिकिट धिटक तान कतिक
धगिन किधित तान शारदा ही धरत
ध्यान गुणिजन सब करत गान
धाकिटतक धुमकिटतक द्रेसाजन
पति मृदङ्ग राज वजत धिरकिटतक
धुमकिटतक धां नाना नां नां नां

❀ समाप्त ❀

